उपासना ।
"वेदान्त केसरी"
कार्यालय ।

ॐ

वेदान्त केसरी में छपे हुए उपासना विषयक् अनुपम और अनुभविक लेखों का अपूर्व संग्रह।

उपासना।

लेखक, पं० स्वामी योगानंद (आलूवाले बाबा)

वेदान्त केसरी कार्यालय
बेलनगंज आगरा।

केसरी प्रेस बेलनगंज आगरा में बाबू सूरजभान गुप्त द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

आगरा।

१०००] संवत् १९८६ [मूल्य ॥)
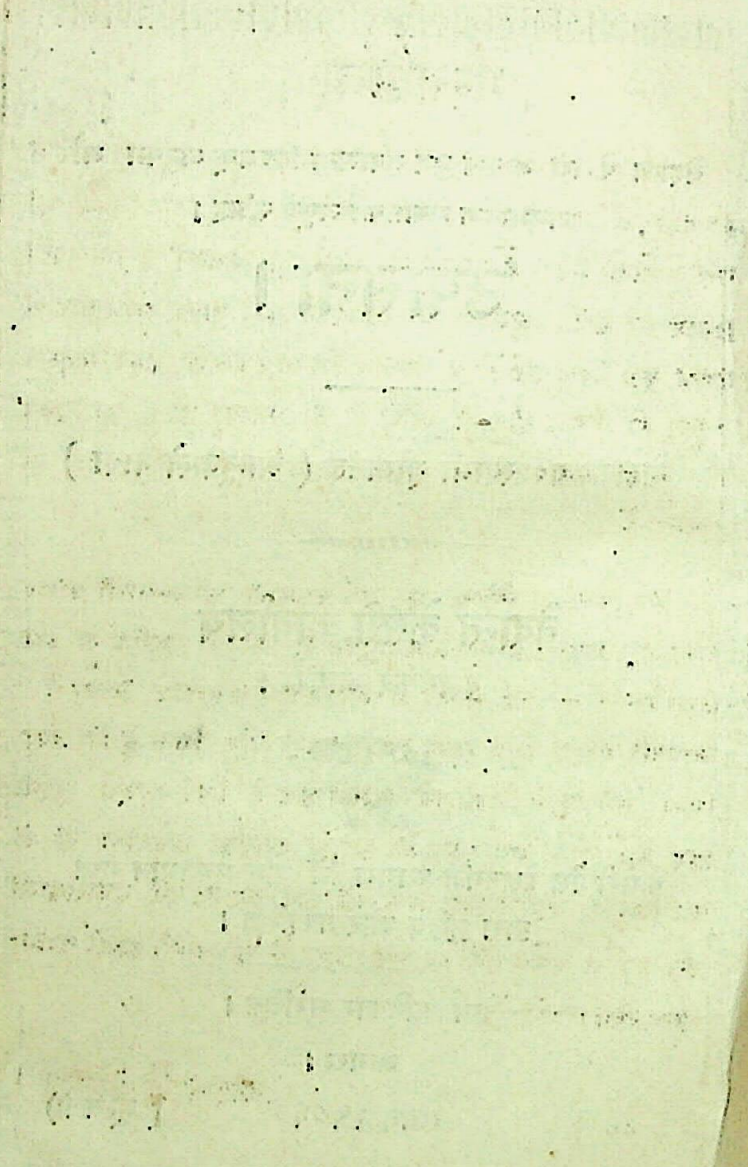
प्रस्तावना ।

उपासना विषयक साहित्य हिन्दी में तथा अन्य भाषाओं में भी बहुत हैं तो भी प्रस्तुत निबंध अपनी श्रेणी और विषय की एक अनोखी रचना हैं । उपासना करने का विषय है केवल कहने सुनने का नहीं । इसलिये इस विषय में वही पुरुष अधिकार के साथ कुछ लिख सकता हैं जिसने कि स्वयं इसका खूब अनुभव किया हो इतना ही नहीं औरों से भी कराया हो । इस विषय में ऐसे ही महापुरुष का कथन प्रमाण रूप से आदरणीय हो सकता हैं ।

इस निबंध के लेखक गुरु वर्य परमहंस श्रीमत्स्वामी योगानन्द जी उपयुक्त श्रेणी के महापुरुष है, जिनके उपदेश से और कृपा प्रसाद से कई पुरुषों ने अपना जीवन कृतार्थ किया है । आपकी उपदेश शैली इतनी सरल, सादी और रोचक है कि उपासना जैसे गहन विषय को आपने सब के लिये अत्यन्त सुलभ कर दिया है। इस ग्रन्थ में सगुण साकार उपासना से ले कर निर्गुण ब्रह्मोपासना तक की सब महत्त्व की उपासनाओं का पर्याप्त वर्णन होने से सब प्रकार के अधिकारी इससे बराबर लाभ उठा सकते हैं ।

ब्रह्मचारी विष्णु ।

अनुक्रमणिका ।

उपासना ।

——):o:(——

वेद में कर्म उपासना और ज्ञान तीनों का विवेचन है, इसलिये सामान्य मनुष्य इन तीनों को एक ही अवस्था के समझते है परन्तु वास्तविक इन तीनों की समान अवस्था नहीं है। कर्म और उपासना एक कक्षा के हैं और ज्ञान उनसे विलक्षण कक्षा का है। कर्म और उपासना दोनों ही कर्म स्वरूप हैं, स्थूलता की विशेषता वाली क्रिया कर्म कही जाती है और सूक्ष्म क्रिया उपासना कहलाती है। जिन कर्मों में ज्ञान की विशेषता नहीं होती वे कर्म कर्मेन्द्रिय के समान हैं, उपासना में भिन्न २ प्रकार के ज्ञान की विशेषता होती है इसलिये उपासना ज्ञानेन्द्रिय के समान है और आत्म ज्ञान साक्षी स्वरूप है। उपासना से कर्म और ज्ञान दोनों का सम्वन्ध है परन्तु ज्ञान माया में होने के कारण वह उपासना कहलाती है। कर्म को अविद्या, उपासना को विद्या और ज्ञान को पराविद्या अथवा स्वरूप कहते हैं। अविद्या अज्ञान की घनता वाली है, विद्या घनता रहित अज्ञान है और पराविद्या ज्ञान स्वरूप है। देवताओं का ज्ञान विद्या स्वरूप उपासना है और पराविद्या आत्म ज्ञान है, जो विद्या और अविद्या से परे है। कर्म और उपासना में क्रिया की आवश्यक्ता है, ज्ञान में क्रिया की

आवश्यकता नहीं है। अज्ञान युक्त कर्म फल को उत्पन्न करता है और उपासना कर्म फ़ल को दिव्यता में ले आती है। उपासना सहित किये हुये कर्म बलिष्ट होते हैं। जब अंतःकरण की शुद्धि के निमित्त उपासना की जाती हें तब अंतःकरण की शुद्धि करती है। फल के निमित्त किया हुआ कर्म जब शास्त्रोक्त विधि और श्रद्धा सहित होता है तब कर्म फल के अदृश्य को उत्पन्न करता है। शास्त्र विधि से शुद्धि के निमित्त किया हुआ कर्म मल–पाप दोष को निवृत्त करता है, शुद्धि के निमित्त की हुई शास्त्रोक्त उपासना विक्षेप-चंचलता को निवृत्त करती है और आत्म ज्ञान–बोध, अज्ञान को निवृत्त करता है। जिसका अंतःकरण मल और विक्षेप दोष रहित है उसकी प्रवृत्ति ज्ञान में भली प्रकार होती है और यदि पूर्व के शुभ संस्कार भी मदद रूप हों तो वह उत्तम अधिकारी होता है। ऐसे उत्तम अधिकारी को श्रवण मात्र से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वह स्वरूप की दृढ़ता से पूर्ण हो जाता है, असंभावना और विपरीत भावना उसे नहीं सतातीं, मध्यम अधिकारी को श्रवण, मनन और निदिध्यासन ज्ञान में मदद रूप होते हैं परन्तु जिस में ज्ञान होने के योग्य शुद्धता और तीव्रता नहीं होती और जिसका मन अत्यन्त चंचल है उसको उपासना करनी चाहिये। यद्यपि उपासना सीधी रीति से ज्ञान प्राप्ति नहीं करा सक्ती तो भी जो मलिनता चंचलता बोध होने में प्रतिबंधक है, उसको निवृत्त करती है। फल के निमित्त कर्म करना जीव रूपी वस्त्र को मैला करना है और फल के निमित्त उपासना करना जीव रूपी वस्त्र पर भौतिक ऐश्वर्य का रंग चढ़ाना है, अंतःकरण की शुद्धि के निमित्त

कर्म करना जीव रूपी वस्त्र को भट्टी में चढ़ाना है और अंतःकरण की शुद्धि के निमित्त उपासना करना जीव रूपी वस्त्र को धो डालना है। जीव अपनी सब उपाधि—मलिनता को छोड़ कर अपना स्वरूप का बोध करे यह ज्ञान है इससे अपने आद्य स्वरूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्म,उपासना और ज्ञान है।

वेदान्त में उपासना एक ही बताई है; क्योंकि उपसना के प्रकार का और उपास्य के गुणों का भेद होने पर भी विद्या एक ही है। वेद विद्या की एकता को दिखलाता है। वेद की सब शाखाओं में भी विद्या की एकाता है। शब्दब्रह्म रूप शास्त्रमें कुशल और ज्ञान विज्ञान में तत्पर हुआ बुद्धिमान् पुरुष शास्त्र का अभ्यास करके और 'वेदों की भिन्न २ शाखाओं में ज्ञान एक ही प्रकार का है' ऐसा जान कर, सब शास्त्रों का त्याग करता है और 'सब शरीरों में आत्मा गुप्त रूप से रहा हुआ है' ऐसा जान कर अंतःकरण से हमेशा आत्मा का चिंतवन करता है। जिस में उपास्य का अभेद रूप से चिंतवन किया जाता है, वह अहंग्रह उपासना है। जैसे शास्त्र और गुरु से 'ब्रह्म मैं हूं' इस प्रकार सुन कर ब्रह्मजो उपास्य और उपासना करने वाला जीव जो उपासक है, उन दोनों को तत्त्व रूप से एक करके किया हुआ चिन्तवन अहंग्रह उपासना है। इस उपासना में उपास्य से उपासक की सत्ता का पृथक भाव नहीं होता। यह उपासना मुख्य है और ज्ञान से सम्बन्ध वाली है। दूसरी उपासना तटस्थ कही जाती है इस उपासना में एक पदार्थ—वस्तु का शास्त्र

विधि के अनुसार अन्य प्रकार से चिन्तवन किया जाता है; जैसे शालिग्राम की बटिया में विष्णु का ध्यान करना, यह सगुण है और ॐ में ब्रह्म का चिन्तवन करना, निर्गुण है। जैसे ॐ अकार, उकार, मकार और अमात्र रूप से ब्रह्म है। अथवा एक २ मात्रा को ऊपर की मात्रा में लय करते हुये अमात्र में सब का लय कर के परब्रह्म स्वरूप को समझना, यह तटस्थ ऊपासना है, इसे प्रतीक उपासना भी कहते हैं। जब ॐ कार का उपासक अपने को शामिल कर के–अपने को पृथक् न करते हुए उपासना करता है तब यह उपासना भी अहंग्रह के समान हो जाती है। उद्गीथ आदि कर्मों में शरीर के अंगों का अवलम्बन कर के जो उपासना की जाती हैं, वह अंगाश्रित अथवा अंगावबद्ध है। अंगाश्रित उपासना में कर्म की विशेषता है, तटस्थ उपासना में उपासना की और अहं-ग्रह में ज्ञान की विशेषता है। सगुण उपासना (विद्या) देव यान मार्ग को प्राप्त कराती है। ज्ञान सहित निर्गुण ब्रह्म के उपासक को जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है, अहंग्रह उपासना का फल साक्षा-त्कार है। तटस्थ उपासना का फल अदृष्ट को उत्पन्न करना है। इस प्रकार अहंग्रह और तटस्थ उपासना में अंतर है। उपासना को ध्यान भी कहते हैं। ध्यान ज्ञान नहीं है, इन दोनों में महान् अंतर है। ध्यान शास्त्रविधि और पुरुष की इच्छा के आधीन है और ज्ञान प्रमाण और प्रमेय के आधीन है, यानी ध्यान शास्त्र में कही हुई विधि के अनुसार पुरुष अपनी इच्छा कर के करता है, उस में श्रद्धा और हठ की भी आवश्यकता है परंतु ज्ञान में प्रमाण और वस्तु आवश्यक है। ज्ञान वस्तु के आधीन है, पुरुष की इच्छा

के आधीन नहीं है। ध्यान अन्य का अन्य प्रकार से होता है और ज्ञान तो वस्तु का ही होता है। ध्यान अप्रत्यक्ष और ज्ञान प्रत्यक्ष है, इस लिये वस्तु रूप है और ध्यान ध्यान करने वाले की बुद्धि के अनुसार होता है।

सामान्यता से ध्यान तीन प्रकार का समझोः—निर्गुण, सगुण और साकार। माया और माया के गुणों से रहित ब्रह्म का ध्यान निर्गुण ध्यान है, माया के गुण युक्त ईश्वर का ध्यान सगुण ध्यान है और उसी ईश्वर—अपने इष्ट का ध्यान जो आकृति और गुणों सहित हो वह साकार ध्यान कहा जाता है। किसी २ को उपनिषद् आदि के श्रवण करने पर भी बुद्धि की मंदता अथवा किसी अन्य प्रतिबंध के कारण महावाक्य के अर्थ से भी अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता, ऐसे मंद अधिकारियों को उपासना-ध्यान करना योग्य है। नदी के निरंतर प्रवाह के समान उपास्य जो अपना इष्ट देव है, उस में चित्त वृत्ति का एकाकार प्रवाह रूप होने को ही ध्यान कहा है। किसी प्रकार का भी ध्यान हो, जो प्रवाह रूप नहीं है, वह ध्यान नहीं है। जो पुरुष विचार करने में असमर्थ हो, उसे चित्त की एकाग्रता करना चाहिये। चित्त की एकाग्रता ध्यान के अभ्यास से होती है। शास्त्र और गुरु मुख से सुने हुये का ध्यान करना चाहिये। ध्यान करने का पदार्थ जो ध्येय है वह ही इष्ट होना चाहिये, क्यों कि इष्ट का ही ध्यान संभव है। ध्यान में पूर्ण श्रद्धा की आवश्यकता है, श्रद्धा रहित परिश्रम करते हुये भी ध्यान नहीं कर सक्ता। श्रद्धा की विशेष आवश्यकता इस कारण है कि

उपादेव प्रत्यक्ष नहीं है उस का स्वरूप शास्त्र अथवा गुरु द्वारा जाना हुआ होता है, यदि उस में श्रद्धा न होगी तो ध्यान किस प्रकार होगा ? श्रद्धा और प्रेम से ही ध्यान होता है। एक वृत्ति से उपास्य का चिंतवन करना चाहिये। संसार के मिथ्या प्रपंच–ऐश्वर्य का विकार वृत्ति में न आवे तव ध्यान होता है। ध्यान में केवल ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी रहती है, यदि इस से विशेष रहे तो ध्यान हुआ न समझना चाहिये। ध्याता, ध्यान करने वाला शरीर के भान रहित वृत्ति ध्यान, और ध्येय उपास्यदेव है। उपास्य देव का साचात्कार उपासना की अवधि है। त्रिपुटी मिट कर एक स्वरूप हो जाने का नाम साचात्कार है। ब्रह्म तत्व के उपासक को वेदान्त शास्त्र के श्रवण से ब्रह्म का जो परोक्ष ज्ञान हुआ था, जब तक ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान हो तब तक उपासना— ध्यान करना योग्य है।

परमात्मा व्यापक चैतन्य स्वरूप होने से सब में अनुस्यूत— ओत प्रोत है। सब पदार्थ ब्रह्म में अध्यस्त होने से संसार रूपी मोह जाल में डूबे हुये मन को वश में न रख सकने वाले अज्ञानी जन समुदाय के हित के निमित्त प्रतिमा पूजन का क्रम शास्त्रकारों ने प्रवृत्त किया है। शिला, धातु, काष्ठ और मृत्तिका आदिक की प्रतिमा बनाई जाती है। शास्त्रोक्त विधि से जिसकी प्राण प्रतिष्ठा आदि क्रिया सज्जनों से की गई हो, उसमें देवता का निवास होता है, और पीछे उसे देव रूप से माना जाता है। परमात्मा देव इन्द्रिय आदिक का विषय न होने से; उसको परोक्षता देने के लिये प्रतिमा में पूजन

का विधान दिखलाया गया है; क्योंकि ऐसे विधान विना अज्ञानी मनुष्यों को ईश्वर का भाव नहीं हो सक्ता। ये प्रतिमा आदिक श्रद्धा बढ़ाने का—भाव उत्पन्न करने का एक साधन रूप हैं। दृढ़ श्रद्धा विना व्यापक परमात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सक्ता। अज्ञानी सूक्ष्म बुद्धि वाले नहीं हैं, इस कारण उनके लिये स्थूल अवलम्बन रक्खा गया है। अधिक कुछ न हो तो भी पूजन पाठ में जितना समय व्यतीत होगा, उतना ईश्वर के भाव में व्यतीत होगा और उतने समय तक प्रपंच का भाव भी हटा रहेगा यह फल अवश्य होता है और इससे बढ़कर ईश्वर की सन्निधि और साक्षात्कार को भी प्राप्त होता है। जब परब्रह्म आत्म रूप से सब में रहा हुआ है तब प्रतिमा में परोक्ष—गुप्त रूप से रहा हुआ है, इसलिये यदि प्रतिमा को परब्रह्म रूप से पूजें तबभी कोई आपत्ति नहीं है। यद्यपि प्रितमा सम्पूर्ण अंश में देव रूप नहीं है तो भी कई अंश में तो है ही। इस प्रकार साकार, सगुण अथवा निर्गुण की उपासना स्वबुद्धि अनुसार करनी चाहिये। उपासना से उपास्य की प्राप्ति अवश्य होती है। यदि शुद्धि के निमित्त पूर्ण श्रद्धा और एकाग्रता से उपासना की जाय तो उससे अन्तःकरण की शुद्धि अवश्य होती है।

राजा करन्धम का बीरा नाम की रानी से उत्पन्न हुवा अवीक्षित नाम का राजकुमार था। उसने बीस वर्ष की उमर में अनेक पराक्रम करके कीर्ति संपादन की थी। एक समय महाराजा विशाल की पुत्री का स्वयंवर होने वाला था, पृथिवी के बहुत से राजकुमारों को निमंत्रण पत्र मिले थे, वे सब स्वयंवर में जा रहे थे। अवी-

क्षित भी अपने साथियों को लेकर स्वयंवर में गया। जिसका स्वयंवर हो रहा था, उसके रूप और गुणों की प्रशंसा सब दिशाओं में फैल गई थी। नगरी बहुत प्रकार से सजाई गई थी, नियत समय पर स्वयंवर का पिछला द्वार खुला। उसमें से एक लावण्यमयी राजकुमारी मन्द गति से स्वयंवर के भीतर आई। सब राजकुमारों की दृष्टि एकही साथ राजकुमारी का स्वरूप देखने को दौड़ गई। ऐसा मालूम होता था कि सबही राज कुमार सुन्दरी का दासत्व स्वीकार करने को तैयार हैं। राज कुमारी की एक सखी आगे बढ़ी, कुमारी उसके पीछे २ चलने लगी। सखी एक राजकुमार के पास पहूँच कर और कुमारी की तरफ मुख करके राजकुमार का नाम, कुल बताती थी और उसकी यश कीर्ति का वर्णन करती थी। जब कुमारी वर्णन सुनकर आगे बढ़ती थी तब सखी दूसरे राजकुमार का वर्णन करती थी। इस प्रकार कई राजकुमारों को अस्वीकृत करके राजकुमारी अवीक्षित के पास आई, उसे भी छोड़ कर आगे बढ़ी। अवीक्षित यह देख कर दुखी हुआ, तुरन्त ही क्रोध से रक्त वर्ण हो गया। उसने युद्ध करके अपने बाहु बल से कन्या को प्राप्त करने का निश्चय किया। इस प्रकार पराक्रम से क्षत्रियों को कन्या लेना भी उत्तम है। क्षण मात्र में उसने म्यान से तलवार बाहर निकाल कर एक हाथ में ली और अपने आसन से उठ कर जहां राजकुमारी थी, वहां जाकर दूसरे हाथ से कन्या को बल पूर्वक उठा लिया और विशाल राजा से कहा "तुम्हारी पुत्री का मैं अपहरण करता हूँ, तुमसे जो हो सके सो करो!" ऐसा कह कर तलवार को हाथ से फिराता हुआ कन्या को लेकर वह स्वयंवर के

बाहर निकल आया। सब दिग् मूढ़ हो गये! विशाल राजा उठ कर स्वयंवर में आये हुये सब राजकुमारों से बोला "इस अपमान का योग्य बदला देने के लिये तुममें से कौन २ मुझे सहायता देगा, यह मैं जानना चाहता हुं।" सभा में से आधे खड़े हुये, ऐसा देख कर सब खड़े हो गये और विशाल के साथ स्वयंवर में से बाहर आये। विशाल राजा ने कहा "चलो! उद्धत युवक के पीछे चलें, उसको योग्य दंड देना चाहिये!"

अवीक्षित का रथ तैयार था। कन्या को ले जाकर, रथ में बैठाकर वह वहाँ से चल दिया। विशाल राजा अन्य राज कुमारों सहित उसके पीछे पड़ा। एक तरफ़ अनन्त सैन्य और दूसरी तरफ़ अवीक्षित और उसके दो अनुचर थे। दारुण युद्ध का प्रारम्भ हुआ। अवीक्षित प्रथम से ही तैयार था। उसने बाणों की वर्षा करना आरंभ किया। अनेक मनुष्य बाणों से हत होकर भूमि की शरण गये, किसी की सामर्थ्य न थी कि मूसलाधार वर्षा के समान अवीक्षित के बाणों के सामने आवे! साथ ही शत्रुओं के बाणों को भी अवीक्षित अपने बाणों से काटता जाता था। थोड़ी देर में ही विशाल राजा की सैन्य भाग निकली और अवीक्षित का जय हुआ। विशाल राजा बहुत दुखी हुआ, कन्या अवीक्षित के ले जाने से राजी न थी परन्तु उसका शौर्य देख कर कन्या ने कायर भागे हुये, राजकुमारों को फिटकार दी। सब फिर से तैयार हुये, अधर्म युक्त अवीक्षित के सामने गये। अवीक्षित फिर लड़ा परन्तु बहुतों के सामने एक कहां तक टिक सक्ता है, अन्त में वह हार गया और विशाल राजा से बन्दीवान करके अपने नगर में लेगया।

राजा करन्धम ने यह सब वृत्तांत सुन कर अपनी सैन्या लेकर राजा विशाल पर चढ़ाई की। राजा विशाल और सब राजाओं के साथ राजा करन्धम का युद्ध हुआ। उन सबका उसके सामने कुछ वश न चला, विशाल की हार हुई। राजा विशाल ने अवीक्षित को मुक्त किया और उत्सव सहित राजकुमारी के देने की प्रार्थना की। लग्न की तैयारी होने लगी। कुमार अवीक्षित को यह बात पसंद न पड़ी, उसने अपने पिता से कहला भेजा:—"पुरुष स्वतंत्र है, स्त्री पराधीन है। मैं रणक्षेत्र में हार गया हूँ, मैं ने अपनी स्वतंत्रता गुमादी है, मैं स्त्री के समान हुं, मैं विवाह नहीं करूंगा।" पिता और श्वसुर दोनों अवीक्षित के निश्चय से घबराहट में पड़े। विशाल राजा ने अपनी पुत्री को यह वृत्तांत सुनाया तब वह कहने लगी "पिता जी! मैं ने उसके समान दूसरा वीर नहीं देखा है। धर्म युद्ध में वह तुमको हरा चुका है, अधर्म युद्ध से ही तुमने जय प्राप्त की थी, मैं उसके सिवाय दूसरे से विवाह न करूंगी!" दोनों राजा आपत्ति में पड़े। दोनों अपनी संतान को चाहते थे। दोनों को समझाया परन्तु कुछ निर्णय न हुआ। राजा करन्धम और अवीक्षित अपने देश को चले गये, राज कुमारी रात्रि को किसी अरण्य में भाग गई और वहां एकांत में अवीक्षित का ध्यान करने लगी। अवीक्षित के विवाह न करने से उसकी माता वीरा को बहुत दुःख हुआ। उसने एक युक्ति ढूंढ निकाली और अवीक्षित को बुला कर कहा "हे पुत्र! मैंने तेरे पिता की आज्ञा पाकर 'किमिच्छकं' नाम व्रत करने का विचार किया है। यह व्रत महा कठिन है। शारीरिक कष्ट तो मैं सहन कर लूँगी परंतु दूसरी मदद

मुझे तेरी तरफ़ से मिलनी चाहिये। मैं तेरी माता कहलाती हूँ, व्रत पूर्ण न होगा तो संसार में हंसी होगी; इसलिये तू प्रतिज्ञा कर कि तू मुझे संपूर्ण सहायता देगा। कुमार ने प्रतिज्ञा की, रानी ने व्रत आरंभ किया। याचकों को इच्छानुसार दान देने का कार्य अवीक्षित को सौंपा गया। जो याचक आता उससे कुमार कहता कि जो तुम मांगोगे वह मैं तुमको दूंगा। चार दिन बाद राजा करन्धम याचक बनकर द्वार पर आया और कुमार से कहा "मुझे दान दे!" कुमार महान् आश्चर्य में पड़ा तो भी बोला "आज्ञा करो, मैं दान देने को तैयार हूँ!" राजा ने कहा "क्या तू अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेगा?" कुमार बोला "हां! मैं अपनी माता के सामने प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, जो मांगोगे सो दूंगा!" राजा ने कहा "तब तू मुझे पौत्र का सुख दे!" अवीक्षित की स्थिति इस समय त्रिशंकु के समान थी। घने कष्ट सहित उसने कहा "पितृ देव! मुझ पर दया करो! मैं कायर मनुष्य पुरुष शब्द के योग्य नहीं हूँ! कायर पुत्र से आपको वंश रखने की इच्छा क्यों होती है?" राजा ने कहा "पुत्र! यह तेरी भूल है! तू अपना मूल्य बहुत न्यून समझता है, तू वीरों का भी वीर है! अधर्म युद्ध में अनेकों से एक हार गया तो क्या हुआ? धर्म युद्ध में तुझ अकेले ही ने अनेकों पर जय प्राप्त की है! बस! अब मैं इतना ही पूछना चाहता हूँ कि तू अपनी प्रतिज्ञा पालन करना चाहता है, या नहीं?" कुमार ने अपनी प्रतिज्ञा और माता के व्रत का भंग होता है यह सोचकर दुखी मन से प्रतिज्ञा पालन करने को अंगीकार कर लिया। राजा रानी प्रसन्न हुये। अवीक्षित ने निश्चय किया कि

विवाह करना तो उसी रमणी के साथ करना। वह मेरे लिये ही किसी जंगल में अपना समय व्यतीत कर रही होगी, ऐसा निश्चय करके राज कुमार राज कुमारी की खोज में निकल पड़ा।

एक दिन जब कुमार जंगल में घूम रहा था तब दूर से आता हुआ एक शब्द उसके कान में पड़ा। यह स्पष्ट शब्द उस के सुनने में आया "राजा करन्धम के पराक्रमी पुत्र की पत्नी को इस दुष्ट से बचाओ !" राज कुमार चौंका और कुमारी के पास पहुंचा तो देखा कि कुमारी को एक अजगर ने पकड़ लिया है। कुमार ने अजगर को मार कर कुमारी को छुड़ा लिया और अपने नगर में ले गया। शुभ मुहूर्त में उन दोनों का विवाह हुआ। कुछ दिन बाद पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार राजा करन्धम रुत नाम के पौत्र का मुख देखने को भाग्यशाली हुआ।

कुमारी की अवीक्षित से जो लगन लगी थी वह ही उसका ध्यान था। सब प्रकार के भाव को छोड़ कर वह अवीक्षितमय हो रही थी, उसके भाव ने ही वीरा रानी को युक्ति दिखाई। रानी ने व्रत धारण किया, राजा ने पुत्र से याचना की, अवीक्षित ढूँढने को निकला, यह सब प्रताप राज कुमारी के ध्यान का था। ध्यान मनुष्य का था, परन्तु ध्यान कैसा होता है यह यह समझने के लिये ठीक है स्त्रियों के लिये उनका पति ही देव है इसलिये उनके लिये पति का ध्यान देवता का ध्यान है। पति ही उनका इष्ट है। अवीक्षित को प्राप्त करने को जैसी लौ कुमारी की लगी थी, ऐसी लौ लगे बिना ध्यान नहीं हो सकता।

कुमारी ने एकांत सेवन किया था, माता पिता अन्य किसी से जव-
रन विवाह न कर दें इसी कारण वह जंगल में भाग गई थी, अवी-
क्षित को उसने देखा था, उसकी छवि उसके अंतःकरण में थीं, उसमें
ही वह अपने चित्त को हमेशा लगाये रहती थी इसलिये वह ही
उसे प्राप्त हुआ।

उपासक भी सुने हुये अथवा प्रतिमा से देखे हुये इष्ट
के स्वरूप को जब अपने अन्तर में धर लेता है, उस में ही
अपने चित्त के प्रवाह को जोड़ देता है, तव उसे भी इष्ट की प्राप्ति
होती है। यह शंका न करना चाहिये कि अनुमान से बांधी हुई
मूर्ति अथवा स्मृति की मूर्ति में चित्त लगाने से वस्तु से किस प्रकार
मेल हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि स्मृति के संस्कारों से
मेल होते हुये भी भाव वस्तु का है; चित्त का नहीं है इसलिये
प्राप्ति वस्तु की होती है।

नवीन अभ्यासियों को ध्यान की बैठक, स्थान आदिक की
व्यवस्था ठीक हो तो वह ध्यान में मदद रूप होती है इसलिये
इसको दिखलाते हैं:—ध्यान करने वाले को चाहिये कि जब
वह ध्यान करने को बैठे तब उसका चित्त सम-प्रसन्न हो। किसी
प्रकार के रजोगुण और तमोगुण की विशेषता वाला न हो। ध्यान
में बैठने के प्रथम कोई विशेष कायिक, वाचिक अथवा मानसिक
परिश्रम किया हुआ न हो, भोजन करने के बाद तुरन्त ही ध्यान
में न बैठे, ऐसे ही ध्यान से हट कर तुरन्त ही खान, पान न लिया
जाय। यदि भोजन करके तुरन्त ही ध्यान किया जायगा तो

ध्यान न होगा, आलस्य आवेगा, । इसी प्रकार जब विशेष भूख लगी हो तब भी ध्यान न करना चाहिये क्योंकि भूख में चंचलता बढ़ जाती है, चंचलता ध्यान को होने नहीं देती, सामान्य (विशेष नहीं) भोजन करके कम से कम दो घन्टे के बाद ही ध्यान करना चाहिये और ध्यान से उठने के बाद जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो तब तक खान पान न लेना चाहिये। कोई एक घन्टे के लगभग में प्रकृति स्वच्छ होती है। ध्यान के बाद सब नाड़ियों का मुख खुला हुआ होता है, यदि उस समय अन्न पानी लिया जायगा तो यथार्थ रीति से अपने स्थान में नहीं पहुंचेगा और शरीर में विक्रिया उत्पन्न करेगा। ध्यान से मुक्त होते ही पैर हाथ को हटाना न चाहिये और एक दम उठ कर खड़ा होना भी न चाहिये; क्योंकि जब ठीक २ ध्यान होता है तब शरीर के बहुत से स्थानों में घूमने वाले प्राण की गति मन्द हो जाती है। ऐसी स्थिति में शरीर की क्रिया करने से हानि होना संभव है। हाथ पैर टूटने लगते हैं अथवा कोई महान् रोग शरीर में प्रवेश कर जाता है। ध्यान प्रत्येक दिन निश्चित किये हुये समय पर करना चाहिये। जो जिसको अनुकूल हो वह समय नियत कर लेना चाहिये। बहुत सुबह का समय उत्तम होता है। आज आठ बजे ध्यान किया, कल दस बजे किया, इस प्रकार समय को बदलना अच्छा नहीं है। बांधे हुये समय पर ध्यान करना ध्यान करने वाले को मदद देता है। समय आते ही ध्यान आपो आप होने का प्रयत्न करता है। ध्यान में बैठने का स्थान एकान्त चाहिये, वहां शोर गुल न होना चाहिये। स्थान पवित्र होना चाहिये, साफ सूफ किया हुआ और धोता हुआ

हों; मच्छर, मक्खी, दीमक आदिक न हों; वायु और उजाला सामान्य होना चाहिये। विशेष वायु ध्यान जमने में विघ्न रूप होता है क्योंकि विशेष वायु के साथ त्वचा का स्पर्श होने से चित्त का स्पर्श की तरफ़ जाने का संभव है। दुर्गन्ध भी न होनी चाहिये, सब प्रकार समानता होने से जब इन्द्रियां अपने स्थान से हट कर जल्दी से मन के साथ संयुक्त होती हैं तब ध्यान करने में मदद मिलती है।

ध्यान बैठ कर करना चाहिये। सोते सोते न करना चाहिये, सोकर—लेटकर ध्यान करने वाला इष्ट का ध्यान नहीं कर सक्ता। निद्रादोष—आलस्य, तन्द्रा आकर सताते हैं। ध्यान करने के स्थान पर नीचे मुलायम आसन बिछाना चाहिये। आसन मुलायम न होगा तो चित्त बैठक में ही रह जायगा। बन सके तो ध्यान करने वाले को प्रथम कुशा का आसन, उसके ऊपर मृग चर्म का आसन और तीसरा वस्त्र बिछाना चाहिये। वस्त्र मुलायम हो तो और भी अच्छा है। पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख से ध्यान हो तो उत्तम है। जब ध्यान करने बैठे तो पालती मार कर बैठे अथवा पद्मासन आदि कोई आसन मालूम हो तो आसन लगा कर बैठे। आसन कोई भी हो परन्तु शरीर समान रहे, इस प्रकार बैठना चाहिये। दाहिने और बांये पैर का और शरीर के अंगों का वजन पृथिवी पर समान पड़ना चाहिये। मोड़े हुये दोनों पैर जमीन पर समानता से टिकने चाहिये। कमर सीधी रखना चाहिये। कमर से आगे

अथवा पीछे झुकना न चाहिये। यदि कमर झुक जायगी तो आलस्य आवेगा अथवा सुषुप्ति अवस्था हो जायगी, ये दोनों ध्यान में बाधक हैं। मेरु दंड (रीढ की हड्डी) सीधा रखना चाहिये, तन कर बैठना चाहिये। गरदन भी सीधी रखनी चाहिये। यदि गरदन आगे की तरफ़ झुक जायगी तो नींद अथवा स्वप्न होगा, ध्यान नहीं होगा। यदि गरदन पीछे की तरफ़ झुक जायगी तो जड़ता प्राप्त होगी, ध्यान न होगा। ध्यान करने में नेत्रों पर जोर देना न चाहिये और ऐसे ही शरीर के किसी अंग पर विशेष जोर न देना चाहिये। यदि नेत्रों पर विशेष जोर दिया जायगा तो नेत्र रोग होगा और जाग्रत् के शरीर का भान न हटेगा, ऐसा होने से ठीक ध्यान न होगा। यदि शरीर के किसी अंग पर विशेष जोर दिया जायगा तो उस अंग में चित्त वृत्ति लगी रहने से ध्यान न होगा। भृकुटी के मध्य में विशेष जोर दिया जायगा तो दर्द होने लगेगा।

नासाग्र, भृकुटी मध्य, हृदय, कंठ आदिक स्थानों में ध्यान करते समय भी स्थान मात्र का ग्रहण करे शरीर के अंगों पर विशेष जोर न पड़े, यह ख्याल रखना चाहिये।

यह ध्यान करने की बैठक हुई। मन कहां रखना, किस प्रकार रखना, किसका किस प्रकार ध्यान करना, यह आगे कहेंगे। ध्यान से मुक्त होकर भी थोड़े समय तक बैठक में बैठे ही रहना चाहिये। मनको ध्यान से हटा कर शरीर के सब अंगों में क्रम से प्रवेश कराना चाहिये। मस्तक की तरफ़ का ध्यान हो तो मस्तक से मनको हटा

कर कंठ में लाना चाहिये, वहां से छाती हाथ की तरफ, फिर पेट की तरफ, फिर कमर, जांघ, घोंटू और पैर की तरफ लाना चाहिये। ध्यान करने से जो प्राण शरीर में मंद पड़ जाता अथवा रुक जाता है वह मन के साथ साथ विशेष होता है। इस प्रकार पांच सात मिनट अथवा आधे घन्टे में शरीर उस हालत में आजाता है, जो हालत ध्यान से प्रथम थी। धीरे धीरे हाथ पैर को हटाना और स्वस्थ होकर शरीर की अन्य क्रियाओं में प्रवृत्त होना चाहिये।

उपासना उप और आसन दो पदों से बना है। उप का अर्थ समीप और आसन का अर्थ बैठना है। समीप बैठना उपासना है, अपने इष्ट के समीप बैठना अथवा मानसिक भाव से अपने इष्ट को समीप रखना उपासना है। इष्ट अप्रत्यक्ष है और अपने समान स्थूल शरीर वाला भी नहीं है। स्थूल शरीर वाला स्थूल शरीर वाले के पास बैठ सक्ता है। इष्ट स्थूल नहीं है, उसके पास बैठ नहीं सक्ते इसलिये मानसिक शरीर से उपासना होती है। यद्यपि जैसा हमारा मानसिक सूक्ष्म है, ऐसा इष्ट का नहीं है तोभी सूक्ष्मता से हमारी और इष्ट की कुछ एकता है। सद्गुरु की उपासना स्थूल और मानसिक दोनों प्रकार से होती है और स्थूल मानसिक संयुक्त भी होती है। सद्गुरु के समीप रहकर उसके भाव वाला बनना स्थूल मानसिक संयुक्त उपासना है; सद्गुरु के स्थूल शरीर के समीप रहना स्थूल उपासना है और मन से गुरु के भाव को धारण करना अथवा गुरु का शरीर अप्रत्यक्ष हो या दूर देश में हो तब मन कर के जो भाव सद्गुरु की तरफ रखना है, उसे मानसिक उपासना कहते हैं, ऐसा होते हुये भी उपासना मानसिक ही होती है, अपनी २

प्रकृति और सहवास के अनुसार प्रत्येक का इष्ट भिन्न २ होता है। विशेष करके साकार देव की उपासना करने वालों के इष्ट देव का स्वरूप भिन्न २ होता है जैसे कोई विष्णु का उपासक है, कोई रामकृष्णादिक अवतार का उपासक, कोई शिव का, कोई भगवती का, कोई काली का, कोई भैरव का, कोई हनुमान का उपासक है। विशेष करके इष्ट देव सतोगुण की विशेषता वाला होता है परन्तु काल भैरव आदि को उग्र समझ कर उपासना की जाती है, उनके उपासक भी उग्र और तमोगुण की विशेषता वाले होते हैं। उनकी उपासना परम पद यानी ज्ञान में मदद रूप नहीं होती। इष्ट और उपासक दोनों सतोगुणी हों तो उपासना का फल होता है यानी उपासक ज्ञान मार्ग में चलने के योग्य होता है। साकार सतोगुणी उपासना किस प्रकार की जाती है यह दिखलाने को दृष्टांत रूप से विष्णु की उपासना दिखलाते हैं:—

जो सच्चा उपासक है, उसमें इस प्रकार के गुण होने चाहियें:—लौकिक धर्म सम्बन्ध में विशेष प्रवृत्ति और प्रेम न रक्खे, अपने कल्याण के निमित्त मोक्ष धर्म में प्रीति वाला हो, शुद्ध और नियमित भोजन करने वाला हो, जहां किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे ऐसे एकान्त स्थान में वास करे, हिंसा न करे, सत्य बोले, चोरी न करे, प्रयोजन से अधिक संचय न करे, ब्रह्मचर्य, तप और सत्य का पालन करे, वेद का पाठ करे, और आनन्दकन्द विष्णु में भक्ति वाला हो,

अभ्यास करके जिसने आसन दृढ़ किया हो, मन और इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला हो, यदि सद्गुरु से आसन

और प्राणायाम प्राप्त किया हो तो ध्यान के समय में आसन लगा कर बैठे और कुछ प्राणायाम करने के बाद ध्यान का आरम्भ करे। यदि ऐसा न कर सके तो पालती मार कर भी ध्यान कर सक्ता है। दृष्टि को बन्द करके अथवा अर्ध मुंदे हुए नेत्रों से ध्यान करे। विष्णु के स्वरूप को हृदय में, नासिका के अग्र भाग में अथवा भृकुटि के मध्य में धारण करे अथवा जहां इष्ट देव की प्रतिमा हो वहां स्वयं जाकर ध्यान करे। गुरु ने जैसी आज्ञा दी हो उसी के अनुसार ध्यान करना चाहिये। कभी हृदय में, कभी नासिका के अग्र भाग में, कभी दृष्टि के सामने इस प्रकार इष्ट के स्थान को फिराया न करे। गुरु ने जो कल्पना बताई हो उसी कल्पना से एक ही प्रकार से हमेशा किया करे। अपनी कल्पना के सिवाय अन्य किसी स्थान में विष्णु का स्वरूप नहीं है, ऐसा मन में धारण करे। जिस प्रकार जब किसी प्रेमी का ख्याल आता है तब वह प्रेमी सामने नहीं होता परन्तु स्मृति में होता है; उस स्मृति के संस्कार सामने आकर प्रेमी के स्वरूप को मन में दिखलाते हैं। इसी प्रकार नियत किये स्थान पर इष्ट के स्वरूप को मन में रक्खे। जब ऐसे स्थान पर जाकर ध्यान करना हो कि जहां इष्ट की प्रतिमा है तो जहां बैठा हो वहां से मन से उठें, मकान के बाहर निकले, मार्ग चल कर मन्दिर में पहुंचे, वहां पहुंच कर इष्ट देव की प्रतिमा के सामने खड़ा हो और प्रतिमा को निरखे–देखे। घर से निकलने, मन्दिर में पहुंचने और ध्यान करने तक अपने मानसिक रूप को ही अपना रूप समझे, स्थूल का भान न रक्खे। यदि किसी स्थूल की तरफ किंचित् भी लक्ष आ जायगा तो ध्यान का क्रम टूट जायगा। स्थूल शरीर का भान हटाने के लिये यह प्रथम की क्रिया है।

मूर्ति और स्थान किसी प्रकार का हो, मूर्ति के प्रति मनकी वृत्ति का प्रवाह अखंडित होना चाहिये। ध्यान के आरंभ में, जिससे उपदेश मिला है उसका ध्यान यदि थोड़ी देर किया जाय तो इष्ट देव के ध्यान में मदद रूप होता है; क्योंकि उपासक की बुद्धि वृत्ति पूर्ण सामर्थ्य वाली नहीं है इसलिये सद्गुरु की बुद्धि वृत्ति की सहायता से अपनी वृत्ति को दृढ़ करने से ध्यान में सुलभता होती है। सब से प्रथम इष्ट देव की संपूर्ण मूर्ति का विचारपूर्वक एक साथ ध्यान करे, फिर इष्ट के अंग उपांग का भिन्न २ ध्यान करता हुआ मूर्ति को संपूर्ण करे।

विष्णु का एक साथ ध्यान इस प्रकार करेः—स्मित हास्य करता हुआ भगवान् का प्रसन्न मुख है। दोनों नेत्र कमल पुष्प के समान लाली लिये हुये हैं, नील कमल के समान श्याम शरीर है। भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये हैं। केसर के समान पीले रंग का रेशमी वस्त्र पहिने हुये हैं, श्रीवत्स का चिन्ह वक्षस्थल पर शोभा दे रहा है। कौस्तुभ मणि युक्त मोतियों की माला कंठ में पड़ी हुई है, कंठ में वनमाला भी है, जिस पर भ्रमर गूँज रहे हैं। छाती पर अमूल्य हार, हाथ में कंकण, शिर पर किरीट, भुजाओं में भुजबन्द और पैरों में नूपुर शोभा दे रहे हैं। कटि का पिछला भाग क्षुद्र घंटिकाओं से शोभता है। भक्तों का हृदयकमल भगवान् का आसन है और भगवान् का रूप परम शांत और दर्शनीय है, देखने से नेत्र और मन तृप्त नहीं होते। किशोर अवस्था है, अनुचरों-भक्तों पर अनुग्रह करने में चतुर हैं, सब देवता, ऋषि मुनि आदि उस सुंदर स्वरूप को प्रेम पूर्वक प्रणाम

कर रहे हैं। भगवान् का कीर्तन तीर्थ के समान पवित्र है। इस प्रकार मानसिक भाव मानसिक मूर्ति के ऊपर करे। अंतःकरण के शुद्ध भाव से चाहे तो बैठी हुई, टहलती हुई अथवा सोती हुई मूर्ति का ध्यान करे।

जब देखे कि भगवान् के सब अंगो में मन भली प्रकार टिका हुआ है तब भगवान् के एक २ अंग में चित्त को इस प्रकार लगावेः—प्रथम चरणों का ध्यान करे, दोनों चरण कमल के तलुओं वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल आदि आकृतिओं की रेखा के चिन्ह हैं, दोनों चरणों की उभरी हुई मांसल पानी है, उनकी दोनों अंगुलियों के नख लाली लिये हुये चन्द्र के समान उज्ज्वल हैं, उनकी कांति से भक्तों के हृदय में का अज्ञान रूप अंधकार नष्ट होता है। जिसके पैर धोने के जल से उत्पन्न हुई पतित पावनी गंगा सब नदियों में श्रेष्ठ है और जिसको कल्याण के निमित्त शिव अपने मस्तक पर धारण करते हैं। इस प्रकार पाप नाशक चरण कमलों का ध्यान करे। फिर जो संसार के भय की निवृत्ति करने वाले हैं, ब्रह्मा की माता, देवताओं को बंदनीय, कमल लोचन लक्ष्मी जी अपने उरुओं पर धर कर अपने हाथों से जिनको दबा रहीं हैं, ऐसे दोनों जानुओं का ध्यान करे। फिर गरुड़जी की भुजाओं पर धरी गई जंघा, जो अलसी के पुष्प के समान शोभा वाली हैं, उनका ध्यान करे। फिर जिसमें लम्बा पीताम्बर चमक रहा है ऐसी शोभायमान भगवान् के नितम्ब का ध्यान करे। फिर जिसमें से सब लोक, आत्मयोनि ब्रह्मा उत्पन्न हुये हैं, जो सबका स्थान रूप है, ऐसी नाभि का ध्यान करे। फिर

मरकत मणि के समान श्याम वर्ण जो दोनों स्तन हैं, जो हारों की चमक से चमक रहे हैं, उनका ध्यान करे। फिर जिसमें महालक्ष्मी निवास करती है, जो मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला और नेत्रों को आनन्द देने वाला है, उस पुरुषोत्तम के वक्षस्थल का ध्यान करे। फिर जो कौस्तुभ मणि को अपनी शोभा से शोभित कर रहा है, जिसको सब लोक नमस्कार कर रहे हैं ऐसे कंठ का ध्यान करे। फिर जिनसे भगवान् ने मंदराचल की रगड़ से समुद्र को मथा था और जिनमें उत्तम बाजुबंद धारण कर रक्खे हैं, ऐसी भुजाओं का ध्यान करे। फिर हजारों धारवाले, जिसका तेज सहन न हो सके ऐसे सुदर्शन चक्र का और भगवान् के हाथ में रक्खे हुए शंख का ध्यान करे। फिर वीर शत्रुओं को जिसने रुधिर की कीचड़ लगादी है ऐसी भगवान् की प्यारी गदा का ध्यान करे। फिर पद्म का ध्यान करे। फिर भ्रमरों के झुंड के झुंड जिस पर गुंजार रहे हैं ऐसी भगवान् की वनमाला का ध्यान करे। फिर आत्मतत्त्वमय कौस्तुभ मणि का ध्यान करे। फिर भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से अवतार लेनेवाले हरि के मुख का ध्यान करे। जो मुख मकराकार कुंडलों के प्रकाश से निर्मल कपोलों की शोभावाला है और नासिका जिस की शोभा को बढ़ा रही है, फिर उस मुख की शोभा को बढ़ाने वाली दोनों नेत्रों को कमल समझ कर भ्रमर भ्रमण कर रहे हैं, उनका ध्यान करे। फिर दोनों नेत्रों के ऊपर मनको हरण करने वाली, जो भौंये हैं उनका ध्यान करे। फिर तीनों प्रकार के तापों को हरणकरने वाली, भगवान् की प्रसन्नता को दिखलाने वाली ऐसी माधुरी मुसकान (स्मित

हास्य) का ध्यान करे। फिर मुनियों के ऊपर उपकार करने वाले, तप आदि कार्यों में विघ्न करने वालों को नाश करने वाले, स्वयं निज माया से रचित हरि के भ्रूमन्डल का ध्यान करे। फिर भगवान् की उच्च हास्य का ध्यान करे। इस हास्य में अधर और ओष्ठ खुलने से दीखती हुई, दाडिम के सूक्ष्म कणकों के समान शोभायमान दन्त पंक्ति का ध्यान करे, फिर मस्तक का ध्यान करे।

इस प्रकार नीचे से लेकर ऊपर तक सब अंगों का ध्यान एक वार करके, फिर भगवान् के सम्पूर्ण स्वरूप को देखकर, फिर नीचे से ऊपर तक के अंगों का क्रम से ध्यान करे। जब ध्यान को छोड़ना हो तब भगवान् की सम्पूर्ण मूर्ति का ध्यान करके, धीरे से चित्त को हटा कर ध्यान से मुक्त हो। प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करने वाला विष्णुमय हो जाता है। जैसे यह विष्णु का ध्यान है इसी प्रकार शंकर, देवी आदिक का भी उपासक ध्यान करते हैं। आकृति, स्वरूप वस्त्रादि का ही उनमें अन्तर है, ध्यान की क्रिया में अन्तर नहीं है, सब क्रियायें एक समान ही होती हैं। किसी प्रकार की उपासना में जव चित्त एकाग्र होता है तव उपासक के सामने चित्त की एकाग्रता का प्रकाश होता है, उस प्रकाश में चित्त लगने से उपास्य की प्रतीति नहीं होती; कभी तारे चमक जाते हैं, कभी बिजली की चमक होती है, कभी सूर्य चन्द्र का प्रकाश दीखता है, क्षण में वह हट जाता है, उपासक इसे देखने की फिर चाहना करता है और उपास्य के भाव से हट जाता है। अथवा कभी २ सुन्दर मन्दिर, वाग वगीचा और साधुओं का दर्शन भी होता है। ऐसे चमत्कारों से चित्त को हटाना चाहिये; क्योंकि उपासक को उपा-

सना में ये विघ्न रूप हैं। जो उनमें से चित्त को नहीं हटाता वह यथार्थ उपासना नहीं कर सक्ता।

मनु के पुत्र उत्तानपाद राजा की सुनीति और सुरुचि दो रानियां थीं,। सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव और सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम था। उत्तानपाद राजा को सुरुचि पर अधिक प्रेम था। सुरुचि ने राजा को इतना मोह में डाल रक्खा था कि सुनीति की तरफ दृष्टि भी नहीं करता था। राजा सुरुचि के महल में रहता था और सुनीति को एक अलहदा मकान में रख दिया था। एक दिन राजा सुरुचि के पुत्र को लेकर खिला रहा था तब खेलता हुआ ध्रुव भी वहां आगया और पिता की गोद में जाकर बैठने लगा; परन्तु राजा ने सुरुचि के भय से उसे गोद में न लिया। ध्रुव गोद में न बैठ सका, सुरुचि वहां खड़ी हुई थी; वह अपने पुत्र की बराबरी करने की इच्छा वाले सौत के पुत्र से गर्व पूर्वक कहने लगी "हे ध्रुव! तू अवश्य राज पुत्र है, परन्तु राजा की गोद और राज्यासन पर बैठने का अधिकारी नहीं हैं; क्योंकि तेरा जन्म मेरे गर्भ से नहीं हुआ! तू बालक है, तुझे यह बोध नहीं है कि मैं मान रहित स्त्री से उत्पन्नहुआ हूँ! राजा की गोद में बैठने का दुर्लभ मनोरथ मत कर! यदि राजा की गोद में बैठने की तुझे इच्छा हो तो ईश्वर का आराधन कर और ईश्वर की कृपा से मेरे उदर से फिर जन्म धारण कर!" अपर माता के मुख से निकले हुये ये वचन ध्रुव को बाण के समान लगे! वह बड़ी २ सांसें लेता हुआ रोने लगा। जब स्त्रीवश राजा चुप रहा, तब वह रोता हुआ अपनी माता के पास आया। ध्रुव को माता ने गोद में बैठा लिया

और दासियों ने आकर ध्रुव के रोने का कारण सुना दिया। सुनीति बहुत दुखी हुई और ध्रुव से कहने लगी "बैटा! इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं है। सबको अपने किये हुये कर्मों का फल मिलता है। जो किसी को दुःख दे आया है, उसको उसीसे दुःख प्राप्त होता है। सुरुचि ने सच ही कहा है, तू मुझ अभागिनी के गर्भ से जन्मा है, मेरे ही दूध से पला है, मुज अभागिनी को तो दासी कह कर अंगीकार करने में भी राजा को लज्जा आती है! यदि तुझे उत्तम के समान राज्यासन पर बैठने की इच्छा हो, तो ईश्वर की आराधना कर! मैं भी कहती हूँ कि तू इर्षा छोड़ कर आराधना ही कर! वेटा तेरे दुःखों को निवृत्त करने वाला कमलनयन के सिवाय कोई दूसरा नहीं दीखता!" विलाप करती हुई माता के इस प्रकार के वचन सुन कर, ध्रुव धैर्य को धारण कर, ईश्वराधना का निश्चय करके नगर से बाहर निकला और जंगलकी तरफ चला। मार्ग में उसे नारद जी मिले। नारदजी उसकी इच्छा को जान कर मन में कहने लगे "अहा! क्षत्रियों का तेज देखो, थोड़ा सा भी अनादर नहीं सह सक्ते! यह पांच वर्ष का बालक है तो भी अपर माता के कड़वे वचनों को नहीं भूलता!" नारद जी अपने मन में ऐसा कह कर ध्रुव से कहने लगे "हे कुमार! तू अभी बालक है, खेलना कूदना ही इस अवस्था का धर्म है, तेरा मान अथवा अपमान क्या? तू माता के बताये हुये जिस ईश्वर को प्रसन्न करना चाहता है अजितेन्द्रिय पुरुष के लिये, उस की आराधना मेरी समझ में अत्यन्त कठिन है! बड़े २ मुनीश्वर जन्म जन्मान्तर उसे ढूंढते रहते हैं परन्तु नहीं पाते, तू इस उद्यम को

छोड़ दे !" इस प्रकार नारद जी के बहुत कुछ समझाने पर भी जब ध्रुव निश्चय से न हठा तब नारद जी ने उपासना की विधि बता कर, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्र और आशीर्वाद दिया । ध्रुव ने नारद जी की प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया । पश्चात् वह मधुवन में जाकर उपासना करने लगा।

नारद जी वहां से चल कर राजा उत्तानपाद के पास पहुंचे। राजा ने उन का पूजन किया और आसन पर बैठाया । नारद जी ने कहा "है राजन् ! तू उदास क्यों है ?" राजा ने कहा "महाराज ! मैं क्या कहूँ ? मैं बड़ा ही निर्दयी हूँ ! स्त्री के वश हूँ ! पांच वर्ष का बालक घर छोड़ कर चला गया है ! मैं ने उस का और उस की माता का अनादर किया है; उस अनाथ बालक की रक्षा कैसे होगी ? मैं स्त्री से जीता गया हूँ, मेरी दुष्टता को देखिये ! वह बालक प्रेम से मेरी गोद में आने लगा । गोद में लेना तो दूर रहा मैं ने वाणी से भी उस का आदर न किया !" नारद जी बोले "राजन् ! तू पुत्र का शोक मत कर, उस की रक्षा करने वाले भगवान् हैं । इस बालक के प्रभाव को तू नहीं जानता, उस का यश ब्रह्मांड भर में व्याप्त होगा ! दुष्कर कार्य करके वह शीघ्र ही तुम से आ मिलेगा !" इस प्रकार कह कर नारद जी वहां से चले गये ।

मधुवन में गये हुये ध्रुव ने नियमित फल फूल का आहार करते हुये, भगवान् की उपासना आरंभ की । इस प्रकार करते २ पांच मास में जब उपासना स्थिर हुई तब वह बाहर के पदार्थों में से सब इन्द्रियों और मन को खेंच कर भगवान् का ध्यान करने

लगा। ध्यान के समय में भगवान् के रूप सिवाय न तो और कुछ दिखाई पड़ता था, और न किसी दूसरे का ख्याल आता था। एक समय बिजली के समान तेजस्वी भगवान् का ध्यान करते २ यकायक मूर्ति अदृश्य हो गई! ध्रुव ने घबरा कर नेत्र खोल दिये तो क्या देखा कि मूर्ति सामने खड़ी है! ध्रुव ने आनन्द से पृथ्वी में गिर कर भगवान् को साष्टांग दंडवत् किया और उसी समय भगवान् की संनिधि में वेदमय वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगा। विष्णु भगवान् प्रसन्न हो कर बोले, "हे राज कुमार! तेरा कल्याण हो! मेरी कृपा से तुझे ध्रुव लोक मिलेगा, जिस को आज तक किसी ने नहीं पाया है। इस लोक में भी तेरा पिता तुझ को राज्य दे कर वन में चला जायगा! तू बहुत काल तक राज्य करेगा तो भी मेरी कृपा से तेरा अंतःकरण विषय भोग में लेपायमान न होगा! तेरा भाई वन में शिकार खेलने जायगा वहां एक यक्ष से उसका मृत्यु होगा। सुरुचि पुत्र शोक से वन में जायगी, वहां दावानल से जल जायगी। तू इस लोक में सब सुख भोगता हुआ बड़ी २ दक्षिणा वाले बहुत से यज्ञ करेगा!" ऐसा कह कर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। ध्रुव अपने पिता के नगर में गया और इस लोक में सुख भोग कर शरीरांत होने पर ध्रुव लोक को प्राप्त हुआ।

ऊपर विष्णु की जिस साकार उपासना का वर्णन किया है, इस प्रकार की उपासना ध्रुव ने की थी, जिस से उस के यह लोक और पर लोक दोनों सुधरे थे। आज कल भी जो शुद्ध और एकाग्र चित्त से इस प्रकार की उपासना करते हैं उन का भी इस लोक और पर

लोक में कल्याण होता है। अन्य देव की उपासना भी इसी प्रकार ही सक्ती है, मात्र उपास्य के स्वरूप और गुणों का अंतर होता है, शेष सब क्रिया समान ही होती है। शास्त्रों में वर्णन किया हुआ इष्ट का स्वरूप विशेष फल दाता है। जो लोग मानसिक पूजन की इच्छा रखते हैं, वे भी अपने हृदय में अथवा किसी मंदिर मैं मन से जाकर, मन से ही इस प्रकार का ध्यान रूप पूजन करते हैं। यह मानसिक पूजन कहा जाता है और एक प्रकार की उपासना ही है।

ऊपर जिस साकार उपासना का वर्णन लै, वह भी सगुण उपासना ही है। उपास्य आकृति वाला होने से उपासना साकार कही जातीं है। सगुण उपासना गुणों की सूक्ष्म आकृति वाली है। अनेक प्रकार के गुणों सहित ईश्वर की आराधना करने का नाम सगुण उपासना है। माया उपहित समष्टि चेतन ईश्वर है, इस ईश्वर की अथवा उसकी अवस्था विशेष की उपासना सगुण उपासना है। गुण मायिक हैं परन्तु ईश्वर माया और उस के गुणों के दवाव से रहित है। जीव की अपेक्षा से ईश्वर सर्वज्ञ है इस लिये जीव भाव वाले को ईश्वर उपास्य है। ईश्वर की जाग्रत् अवस्था जो विराट नाम से कहलाती है. उसके अभिमान वाला ईश्वर वैश्वानर है। उसकी उपासना सगुण उपासना है और जब जीव वैश्वानर से अपने को भिन्न न रखते हुये—अभेद उपासना करता है, तव यह उपासना सगुण वैश्वानर की अभेद उपासना कहलाती है, और जब उपासक भिन्न रह कर उपासना करता है तब वह सगुण भेद उपासना कहलाती है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ जो ईश्वर के सूक्ष्म शरीर का अभिमानी है, उसकी भी उपासना होती है, समष्टि

कारणाभिमानी ईश्वर है, उसकी भी उपासना होती है। भेद उपासना से उपासक को ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और अभेद उपासक को उपासना के अनुसार वैश्वानर, हिरण्यगर्भ अथवा ईश्वर की प्राप्ति रूप फल होता है। अभेद उपासना को शास्त्र में अहंग्रह उपासना कहा है, ऊपर वाली सब सगुण उपासनायें कार्य ब्रह्म की उपासना रूप हैं। निर्गुण उपासना कारण ब्रह्म की उपासना है, सगुण उपासक की यथार्थ उपासना से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है, ब्रह्म लोक की प्राप्ति रूप अपरा विद्या है और ब्रह्म प्राप्ति रूप परा विद्या है यानी कार्य ब्रह्म अपर ब्रह्म है और कारण पर ब्रह्म है। परमात्म बुद्धि से ॐकारोपसना, गायत्री उपासना, दहर ब्रह्मोपासना आदि जब कार्य ब्रह्म का अवलम्बन लेकर की जाती हैं तब वे सगुण उपासना हैं और जब गुण, गुणी को छोड़ कर केवल परब्रह्म के अहंग्रह भाव से की जाती हैं तब वे ही निर्गुण उपासना हो जाती हैं।

सगुण ब्रह्म वेत्ता पुरुष के संकल्प की प्राकृत पुरुष के संकल्प से विलक्षणता है। ब्रह्म लोक प्राप्त करने वाले को संकल्प के बल से ही प्रयोजन पर्यन्त भोग और भोग के साधनों की स्थिरता संभवित है। वह विद्वान् अन्य अधिपति रहित होता है और स्वतन्त्र गति से सब लोकों में विचर सक्ता है; क्योंकि ईश्वर के धर्म ही उस विद्वान् में आविर्भाव को प्राप्त हुए होते हैं। उसके संकल्प का भंग नहीं होता। जब शरीर का संकल्प करता है तब शरीर वाला और अशरीर का संकल्प करता है तब अशरीरी होता है। शरीर के अभाव में भी स्वप्न के समान भोग का संभव है, वह जो कुछ संकल्प करता

है सिद्ध होता है। जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार के सिवाय सब विभूति ईश्वर के समान उसको प्राप्त होती हैं। प्रलय काल में जब हिरण्यगर्भ के लोक का नाश होता है, तब उपासक को ज्ञान होकर विदेह कैवल्य प्राप्त होता है, निर्गुण यानी कारण ब्रह्म के उपासक को सद्योमुक्ति प्राप्त होती है यानी मोक्ष होता है। उसको ब्रह्म लोक की प्राप्ति रूप क्रम मोक्ष में जाना नहीं पड़ता; किन्तु सबका अन्तिम जो ज्ञान का फल है, वह प्राप्त होता है। यदि उपासक कारणब्रह्म की उपासना करता हो और ब्रह्म लोक के ऐश्वर्य की तरफ़ उसका भाव हो तो वह कारण ब्रह्म को प्राप्त नहीं होता; किंतु कार्य ब्रह्म को ही प्राप्त होता है और यह प्रतिबन्ध न हो तो कैवल्य को प्राप्त होता है। यद्यपि निर्गुण अहंग्रह रूप कारण ब्रह्म की उपासना भी भ्रम रूप है तो भी फल भ्रम का नहीं होता; क्योंकि पदार्थ की खबर न होते हुए भी जब कोई सच्चे पदार्थ की तरफ सच्चे भाव से दौड़ता है तब पदार्थ की ही प्राप्ति होती है। इसी प्रकार न जानते हुये भी जब भाव से परब्रह्म की तरफ जाते हैं तब परब्रह्म की ही प्राप्ति होती है। इसको संवादी भ्रम कहते हैं। संवादी भ्रम भ्रम होते हुये भी उसका फल यथार्थ है। श्रवण मनन के बाद जो निदिध्यासन है, वही कारण ब्रह्म की उपासना है। जब बुद्धि की मंदता के कारण टिकाव नहीं होता तब लक्ष रखते हुये 'ब्रह्मास्मि' का जो जाप किया जाता है, वह भी अहंग्रह निर्गुण उपासना है। लय चिंतवन द्वारा यानी नीचे २ वाले का लय करते हुये और ऊपर २ का चिन्तवन करते हुये, अन्तिम तत्त्व में पहुँच जाना अथवा अन्वय

व्यतिरेक से अथवा अन्य प्रकार से भी जो निदिध्यासन किया जाता है, वह सब निर्गुण उपासना रूप ही है।

भारत वर्ष के मध्य प्रदेश में धर्मनगर नाम का एक बड़ा शहर था। वहां से सब दिशाओं में जाने का मार्ग था, सब वर्णों की वस्ती थी और सब लोग सामान्यता से सुखी थे। उस नगर को लोग मध्यनगर भी कहते थे। वहां सब प्रकार के धन्धे-रोजगार से लोग अपना निर्वाह करते थे। श्रीमान्, मध्यम और ग़रीब तीनों प्रकार के लोग वहां रहते थे। वहां से वहुत दूर उत्तर दिशा में मुक्तिनाथ का पवित्र तीर्थ था। वहां जाने का मार्ग वहुत विकट था। जो घर पर लौट आने की इच्छा नहीं करता था वह ही मुक्तिनाथ की यात्रा करने को जाता था। यात्रा करने के समय प्रत्येक मनुष्य अपनी माल मिलकत का वसीयत नामा करके नगर और कुटुम्बियों को अंतिम प्रणाम करके जाता था। मुक्तिनाथ में गया हुआ कोई भी फिर लौट कर नहीं आता था। परंतु वहां जाने वालों के लिये एकही दिन नियत था। उस दिन ही मुक्तिनाथ के जाने के मार्ग का द्वार खोला जाता था। जिसको जाने की इच्छा होती थी वह मार्ग के खर्च का प्रवंध प्रथम ही कर लेता था।

एक समय ब्रह्म देव नाम के ब्राह्मण ने मुक्तिनाथ जाने की इच्छा की। अपने घर कुटुम्ब का सब प्रबंध अपनी वुद्धि अनुसार करके वह जाने के दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके पड़ोस में गुण निधि नाम का एक क्षत्रीय रहता था। ब्रह्मदेव का साथ समझ कर उसने भी मुक्तिनाथ जाने की इच्छा की। वह भी सब प्रकार से जाने के

लिये तैयार हुआ। उस को देख कर उसका पड़ोसी ईश्वर लाल नाम का एक वैश्य भी अनुकूल साथ समझ कर दोनों के साथ जाने को तैयार हुआ। उसको मुक्तिनाथ जाने की इच्छा नहीं थी, किंतु मुक्तिनाथ के मार्ग में एक अत्यन्त रमणीक, इन्द्र पुरी से भी अधिक शोभा वाली, वैभवपुरी आती थी उस वैभवपुरी में वैभव के निमित्त वह जाना चाहता था। मुक्तिनाथ जाने का दिन आया, मार्ग खुला और तीनों मनुष्य चल निकले। थोड़े दिनों के वाद तीनों वैभवपुरी में आये। ब्रह्मदेव ने वैभव पुरी के भीतर घुसने को ना कर दी और कहा "मैं तो मुक्तिनाथ को ही जाऊंगा! वैभव पुरी से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है।" गुण निधि ने कहा "जब यहां आये ही हैं तो वैभव पुरी को भी देख लेना चाहिये। मुक्तिनाथ को जाना है ही वहां तो अवश्य ही जांयगे। थोड़े दिन यहां रहकर यहां की शोभा भी देख लेना चाहिये।" ब्रह्मदेव न माना, वैभव पुरी को छोड़ कर अपने मार्ग लगा। ईश्वर लाल वैभव पुरी के लिये आया ही था, इसलिये वह, और देखने की इच्छा से गुण निधि, इस प्रकार दोनों वैभव पुरी में गये। ईश्वर लाल ने एक मकान किराये लिया और थोड़े दिन रहना है, ऐसा विचार कर गुण निधि उसके साथ ही रहा। ईश्वर लाल बहुत सा धन अपने देश से लाया था, उस धन से वह अनेक प्रकार के भोग भोगने लगा। गुण निधि के पास बहुत सा धन न था; परन्तु मुक्तिनाथ पहुंच जाय इतना ही था। उस धन में से उसने वैभव पुरी में खर्च करना आरंभ किया। पांच सात दिन में बहुत सा धन खर्च हो गया। अब उसके पास मुक्तिनाथ जाने के लिये भी खर्च न रहा। वहां के लोगों से पूछा

तो मालूम हुआ कि वैभव पुरी में से कोई भी मुक्तिनाथ को नहीं जा सक्ता—वैभव पुरी में आने के बाद निकल नहीं सक्ता। सौ साल के बाद एक भारी संग निकलता है, उस समय वैभव पुरी के सब लोग राजा के साथ मुक्तिनाथ को जाते हैं, बीच में कोई जाने नहीं पाता। इस प्रकार गुणनिधि को भी वहां टिकना पड़ा। उस के पास धन घट गया था, अब वैभव पुरी में रहना उसे कठिन मालूम हुआ; इसलिये उसने समुद्र में गिर कर मर जाने का निश्चय किया। अच्छे २ कपड़े मेरे मरने के बाद किस काम में आवेंगे, ऐसा सोच कर वह सब कपड़े पहिन कर समुद्र किनारे पर पहुंचा। वहां परदेश से एक जहाज आया हुआ था, उसके माल का नीलाम हो रहा था। गुणनिधि मजाक से बोली बोल उठा, नीलाम उसके नाम खतम होगया। उसके पास दाम थे नहीं, एक मनुष्य ने एक लाख रुपये बढ़ाकर, वह माल उससे ले लिया। इस प्रकार गुण निधि को एक लाख रुपया मिल गया। वह अब भी वैभव पुरी में है, वैभव भोग रहा है, सौ साल के बाद ही वह मुक्तिनाथ को जाने पावेगा। ब्रह्मदेव शीघ्र ही मुक्तिनाथ में पहुंच गया और कृतार्थ हुआ।

इस दृष्टांत से यह समझना चाहिये कि मध्य प्रदेश मनुष्य लोक है, वैभव पुरी ब्रह्म लोक है, और मुक्तिनाथ पर ब्रह्म है। ईश्वर-लाल सगुण उपासक था, वह कार्य ब्रह्म की उपासना से ब्रह्म लोक को गया। गुण निधि निर्गुण उपासक था, परन्तु ब्रह्म लोक की इच्छा से ब्रह्म को प्राप्त न होकर ब्रह्म लोक में रहा और ब्रह्म देव

निर्गुण उपासक था, वैभवपुरी-ब्रह्मलोक की उसे कामना न
इसलिये वह कारण ब्रह्म को प्राप्त हुआ।

———:o:———

ब्रह्मोपासना।

किसी प्रकार की उपासना हो, सहारा लिये बिना नहीं होती
स्थूल, सूक्ष्म और कारण भेद से सहारा तीन प्रकार का होता है
सगुण जो साकार उपासना है, उसमें सहारा स्थूल है। अमु
आकृति वाले, अमुक गुण वाले इष्टदेव की जो उपासना की जा
वह सगुण-साकार उपासना है। सगुण और निर्गुण भेद से ब्र
की उपासना दो प्रकार की है। सगुण ब्रह्म कार्य ब्रह्म कहलाता
और निर्गुण ब्रह्म कारण ब्रह्म कहलाता है। जिसमें गुणों का सहा
हो यानी उपास्य अमुक २ गुण वाला है, इस प्रकार मन
धारणा से जो उपासना की जाय, वह सगुण ब्रह्मोपासना है
साकार इष्टदेव की उपासना से सगुण सूक्ष्म है। सगुण साकार
सगुण निराकार ब्रह्मोपासना कठिन है और जिसमें गुणों का प्रवे
न हो, ऐसी जो उपासना है, वह निर्गुण ब्रह्मोपासना है, और सगु
से कठिन और श्रेष्ठ है। निर्गुण ब्रह्मोपासना में गुणों का प्रवेश न
है तो भी वह गुणों के सहारे से लक्ष कराने वाली है। शास्त्र
कथन किये हुये विधि और निषेध विशेषणों—गुणों से लक्ष क
कर उपासना की जाती है।

सगुण उपासना के अधिकारी से निर्गुण उपासना का अधि
कारी उच्च होता है यानी अंतःकरण की विशेष शुद्धि वाला

सूक्ष्म बुद्धि वाला होता है, ऐसा न हो तो निर्गुण ब्रह्मोपासना कर नहीं सक्ता। सब प्रकार की उपासनाओं में निर्गुण ब्रह्मोपासना सब से श्रेष्ठ है और उसका फल भी अंतिम कैवल्य है। जिसका अंतःकरण पूर्ण शुद्ध न हो, जिसकी बुद्धि अति तीव्र न हो, श्रद्धा से सद्गुरु के शरण जाने पर और तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों का गुरु मुख श्रवण करने पर भी जिसको तत्त्व का बोध न हो, वह पुरुष निर्गुण उपासना का अधिकारी है। जो निर्गुण उपासना न कर सके यानी जिसका चित्त निर्गुण उपासना को न पकड़ सके, ऐसा पुरुष सगुण ब्रह्म की उपासना का अधिकारी है।

बोध और उपासना एक नहीं हैं, इन दोनों में अन्तर है। बोध प्रत्यक्ष है, उपासना अनुमान है; बोध सत्य स्वरूप वस्तु का है, उपासना कल्पना है तो भी क्रम से ज्ञान और मोक्ष का हेतु है। सगुण उपासना से कार्य ब्रह्म की और निर्गुण उपासना से कारण ब्रह्म की प्राप्ति होती है। सगुण ब्रह्म ब्रह्मलोक है और निर्गुण ब्रह्म कारणब्रह्म रूप यानी कैवल्य वा परमपद है। उपासना संवादी भ्रम है। भ्रम होते हुये भी जिसका अनायास होने वाला फल यथार्थ हो, उसे संवादी भ्रम कहते हैं। उपासना का फल यथार्थ है इसलिये अधिकारी मुमुक्षुओं को वह अवश्य कर्तव्य है। बोध ज्ञान स्वरूप है, उपासना कर्म स्वरूप है क्योंकि उपासना मानसिक क्रिया है। उपासना कर्म होते हुये भी ज्ञान स्वरूप की तरफ की श्रद्धा क्रिया होने से बोध को प्राप्त कराती है। उपासना कर्म है तो भी कर्म का अंत करने वाली होने से दोनों प्रकार की ब्रह्मोपासना

ज्ञान का साधन कही जाती हैं। किसी पूर्ण संस्कारी को ही उपा-
सना रहित तत्त्व बोध हो सक्ता है इसलिये अधिकार के अनुसार
उपासना कर्तव्य है। उपासना का फल यथार्थ होने से उपासना
व्यर्थ नहीं जाती इसलिये करने के योग्य है। उपासना से कित
समय में ज्ञान—मोक्ष होगा यानी उपासना का फल कब प्रा
होगा यह निश्चित नहीं है इसलिये जब तक उपासना का फल
आत्म-बोध प्राप्त न हो तब तक उपासना करते रहना चाहिये।
यदि उपासना करते हुये शरीर का पात होजाय तो भी उपासना
व्यर्थ नहीं होती, आगे वह ही उपासना फिर से चालू होती है
उपासक उपासना किये जाय, किसी प्रतिबंध से न रुके तो अवश्
फल को प्राप्त कर लेता है।

बोध से उपासना की कक्षा भिन्न है तो भी उपनिषद
में उपासना के अनेक विधान ज्ञान के साथ में अथवा ज्ञा
के आरंभ में कहे गये हैं क्योंकि वे बोध का हेतु हैं। निर्गुण
उपासना एक होते हुये भी अनेक प्रकार से होती है, उन सबका
फल एक तत्त्व बोध ही से। वेद की शाखायें बहुत होने से शाख
भेद से उपासनाओं का भेद है परन्तु फल एक ही है। फल में भिन्नता
न होने से उपासना एक ही है, जैसे अनेक प्रकार के भोजन बना
की विधि भिन्न २ है परन्तु भोजन से होने वाली तृप्ति रूप फल एक
ही है। इसी प्रकार सब निर्गुण उपासनाओं का फल एक ही है।

सगुण साकार उपासना की विधि, बैठक-आसन आदि प्रथम
बता चुके हैं। निर्गुण ब्रह्मोपासना में उस विधि की विशेष आव

श्यकता नहीं है; क्योंकि यह उपासना मानसिक और श्रद्धा प्रधान है। यदि इस उपासना में उसी प्रकार आसन आदि से बैठें तो कुछ हानि भी नहीं है। चित्त अति चंचल होने के कारण सगुण साकारोपासना में आसनादिक की मदद की आवश्यकता रहती है, ब्रह्मोपासना वाले का चित्त इतना चंचल नहीं होता इस लिये उस को आसनादिक की आवश्यकता नहीं है। सगुण साकारोपासना का विषय मन से ग्रहण होता है और ब्रह्मोपासना का ग्राहक श्रद्धा और निश्चयवाला है, सगुण उपासना वा निर्गुण ब्रह्मोपासना में विचार युक्त एकाग्रता है। उस में बुद्धि वृत्ति उपास्य के समान आकार वाली होनी चाहिये और अन्य व्यवधान को आने न देना चाहिये। अप्रत्यक्ष होने से उपासना श्रद्धा की नींव पर खड़ी की जाती है, यदि नींव दृढ़ न हो तो उपासना रूप महल बन नहीं सक्ता यानी उपासना का फल यथार्थ नहीं हो सक्ता। गुरु वाक्य को अटल समझ कर वाक्यानुसार श्रद्धा से बनाई हुई मूर्ति के साथ बुद्धि वृत्ति की एकता होनी चाहिये। जैसी जिस की बुद्धि होती है, वैसा ही वह पुरुष समझा जाता है। बुद्धि वृत्ति का निश्चय जीव भाव है। यदि वृत्ति जीवाकार है तो जीव है। वास्तविक जीव है नहीं, ब्रह्म तत्त्व ही वास्तविक है। तत्त्व के भाव की वृत्ति को निर्गुण उपासना कहते हैं। अंतःकरण की तत्त्वाकार वृत्ति तत्त्व बोध है और तत्त्व के भाव की वृत्ति निर्गुण उपासना है यानी तत्त्व बोध तत्त्वाकार वृत्ति है जिस को साक्षात्कार कहते हैं और तत्त्व के भाव की वृत्ति उपासना है। तत्त्वाकार वृत्ति वस्तु स्वरूप है, और तत्त्व भाव की वृत्ति कल्पना रूप है। कल्पना रूप होते

हुये भी सत्य की कल्पना होने से फल में यथार्थ है। जिस प्रकार जीव भाव के निश्चय से जीव बन कर सुख दुःख का भोग करता है, इसी प्रकार जब ब्रह्म भाव का निश्चय होता है तब जीव भाव टूट जाता है। जीव भाव टूटने तक ब्रह्म भाव रखने की आवश्यकता है, पीछे नहीं है क्योंकि जब जीव भाव टूट जाता है तब ब्रह्म ही शेष रहता है। ब्रह्म वस्तु है इसलिये भाव की आवश्यकता नहीं है।

एक घोड़े सवार मुसाफिर जंगल में पानी के एक झरने के पास घोड़े को पेड़ से बांध कर बैठा था। वह थका हुआ था उसको नींद आगई। थोड़ी देर बाद आवाज होने से जागा तो क्या देखता है कि एक भयंकर सिंह घोड़े को पंजों से मार रहा है। सवार तलवार लेकर सिंह की तरफ दौड़ा, सिंह ने भी सामने से हमला किया। बड़ी मुश्किल से सिंह मारा गया। मुसाफिर का प्यारा घोड़ा प्रथम ही मर चुका था इसलिये वह दुःखी होता हुआ पैदल ही वहां से आगे चला। चलते २ शाम हो गई परन्तु बस्ती न आई। अंधेरा हो गया था, रस्ते चलते किसी कोमल वस्तु का उसे स्पर्श हुआ। दियासलाई सुलगा कर उसने देखा एक तुरन्त का जन्मा हुआ हरिन का बच्चा दिखाई दिया। उसको देखकर मुसाफिर प्रसन्न हुआ और जी में सोचने लगा "मैं भूखा हूं, जंगल में से घास फूंस एकत्र करके, इसको पका कर भोजन करूंगा।"

इतने में सामने एक हरिनी दिखाई दी, जो मुसाफिर की तरफ देख रही थी और दीन दृष्टि से बच्चे को छोड़ देने की याचना कर रही थी, कभी पास आजाती थी कभी भयसे भाग जाती थी।

मुसाफिर ने बच्चे को हरिनी के सामने रख दिया। हरिनी छलांग मार कर मुसाफिर के पास आगई। मुसाफिर को दया आई, उसने बच्चा उसको दे दिया। हरिनी बच्चे को मुख से पकड़ कर और मुसाफिर का आभार मानती हो इस प्रकार देखती हुई चली गई। मुसाफिर को इस दृश्य से बहुत आनन्द हुआ, उसने समझा कि ईश्वर की कृपा से आज मुझ से एक शुभ कार्य हुआ। इस प्रकार प्रसन्न होता हुआ रात्रि में ही वह आगे चला।

थोड़ी दूर जाने के बाद एक झोंपड़ी दिखाई दी। वहां एक मनुष्य बैठा हुआ था, मुसाफिर ने कहा "महाशय! मैं आज की रात तुम्हारे पास रहना चाहता हूँ।" मनुष्य ने यह बात मान ली और उसके खाने को दिया। मुसाफिर भोजन करके निश्चिंतता से झोंपड़ी में सो गया। थोड़ी देर में उसे एक सुंदर स्वप्न आया। हरिनी को उस का बच्चा सोंपने का दृश्य उसने देखा, इतने में सफेद वस्त्र धारण किये हुये एक दिव्य आकृति सामने आकर खड़ी हुई, उसके शरीर के आस पास वर्तुलाकार तेज फैल रहा था। उसने कहा "तू ने हरिनी के बच्चे पर जो दया की है, आप भूखा रह कर उसकी जान बखशी है, उसका फल रूप तू गजनी का बादशाह होगा! बोल! मैं गजनी का बादशाह हूँ!" मुसाफिर ने कहा "मैं गजनी का बादशाह!" बोलते ही हर्ष के साथ मुसाफिर जाग गया तो क्या देखता है कि वह कैद में पड़ा हुआ है! रात्रि वाले लोग लुटेरे थे, उन लोगों ने मुसाफिर को लूट कर अपना कैदी बना दिया था। तीन दिन तक उन लोगों ने मुसाफिर को कुछ खाने को न

दिया और गुलाम बना कर चौथे दिन कंधार के बाजार में लेजा बेच दिया। एक व्यापारी ने दो सौ रुपये में खरीद लिया, दश बारह दिन तक खूब खिला पिला कर मोटा ताजा करके बेचने को निकाला।

इस समय खुरासान का सूबा अलप्तगीन कंधार में आया हुआ था, उसने अच्छा गुलाम समझ कर मुसाफ़िर को खरीद लिया। अलप्तगीन खोरासान में गया और नोंकरों के साथ नये गुलाम से घर का काम लेने लगा। कुछ दिन बाद नया गुलाम कमरे में झाड़ू दे रहा था तब उस ने दीवार पर एक तस्वीर देखी जिसमें कुछ हरिन स्वेच्छा से इधर उधर फिरते हुये घास खा रहे थे। गुलाम उस तस्वीर को झुक २ कर देखने लगा, उसको यह तस्वीर बहुत पसन्द आई। उसको देख कर उसे हरिन के बच्चे को बचाने की स्मृति हो आई। वह चित्र देखने में इतना तल्लीन हो गया कि उसे आस पास की कुछ खबर न रही। उसी समय अलप्तगीन कमरे में आया और गुलाम के पीछे खड़ा हो गया। वे खबरी में गुलाम के मुख में से जंगल, हरिनी के बच्चे को बचाना, हरिनी का आभार दर्शक मुख बनाना, गज़नी का बादशाह होना, इत्यादि शब्द निकल पड़े। वे सब शब्द अलप्तगीन ने सुन लिये। उस समय वह कुछ न बोला और चुप चाप बाहर चला गया।

रात्रि के दश बजे जब सब सो गये थे तब अलप्तगीन के सोने के कमरे के बाहर गुलाम जागता हुआ पड़ा था। उसने किसी के पैर का खटका सुना, देखा तो मालूम हुआ कि उसका मालिक

अल्सगीन है। अल्सगीन ने अपने साथ आने को इशारा किया। गुलाम उसके पीछे २ हो लिया। अल्सगीन कमरे में जाकर बोला "हे गुलाम! मैं ने तुझे क्यों बुलाया है, क्या तू जानता है? मैं जानना चाहता हूँ कि तू कौन है, तू किसी आली खानदान में पैदा हुआ मालूम होता है, सच कह!" गुलाम बोला "आप जैसे रहम दिल आक़ा के रूबरू मैं कुछ पोशीदा नहीं रख सक्ता, मैं ईरान के सब से अखीर शाह यज़्दी ज़र्द खानदान में हूँ, उसकी खराब हालत का हाल आप जानते ही हो! गरीब हालत में बड़ा हुआ हूँ, मैं अपनी तारीफ़ नहीं करता, सच कहता हूँ कि मुझे किसी को सताना अच्छा नहीं लगता।

खुदावन्द करीम जानता है, मैंने आज तक किसी के दिल दुखाने का गुनाह नहीं किया! ऐसा होने पर भी खुदा की कुदरत है, मुझे दुःख पर दुःख ही सहना पड़ा है!" ऐसा कहते हुये उसके नेत्रों में से आंसू गिरने लगे! जो कुछ छुप कर सुना था उसको सच्चा समझ कर अल्सगीन हर्षित हो कर बोला "दुखी हरिनी को सुखी करने वाले शाही खानदान के मुसाफ़िर! आ, मुझ से भेट कर, तू मुझ से ऊंचे खानदान का है, मुझे तुझ से भेट करने में शर्म नहीं है!" ऐसा कह कर अल्सगीन ने गुलाम से प्रेम पूर्वक भेट की और कहा "क्या तुझे कुछ लिखना पढ़ना आता है?" गुलाम ने हां की। अल्सगीन ने उसे अपना खानगी मंत्री नियत किया, कुछ दिन बाद सैन्यापति बनाया और राज काज में उसकी राय लेने लगा। सब सरदार भी

गुलाम से राजी थे, पश्चात् उसको अमीरुलउमरा का खिताब दिया गया, तब से वह अमीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक दिन अमीर अपने कमरे में बैठा था, सामने उसे कुछ आहट सुनाई दी। देखता क्या है कि खोरासन के सूबे अल्तगीन की पुत्री जोहरा आरही है। अमीर ने नमन करके कहा "क्या आपको कुछ चाहिये ?" जोहरा ने कहा "हां !" और कुछ न बोलने से अमीर समझ न सका कि क्या चाहती है इसलिये बोला "अपने घर की आप मुखत्यार हो, जो आपको चाहिये ले सक्ती हो !" जोहरा बोली "अमीर ! मुझे आपके पास से कुछ लेना है !" अमीर नमन करके बोला "यह खादिम जान देने तक को भी तैयार है !" जोहरा बोली "बस ! तो दे द !" अमीर बोला "आपको किस तरह जान दूं, फरमाइये ?" जोहरा चार पांच कदम आगे आई और अमीर को टिक टिकी बांध कर देखती हुई बोली "मेरी जान आपको बचानी चाहिये, कुदरत की आग से बचानी चाहिये, मैंने इस काम के लिये आपको ही पसन्द किया है, मेरी सहेलियों ने भी संमति दी है !" अमीर जी में सोचने लगा "जोहरा मुझे खाविंद बनाना चाहती है, अगर हां कर दूं तो फसूँ और मालिक ना खुश हो तो भी मुश्किल !" अमीर को चुप देख कर जोहरा बोली "अमीर ! बोलते क्यों नहीं ? मुझे जवाब दो, मुझे जाना है !" अमीर बोला "मैं क्या जवाब दूं ? आपको जवाब देने का मुझे अखत्यार नहीं है ! मैं एक गुलाम हूं !" जोहरा बोली "अपने ऊपर सबको अखत्यार होता है, तुम अमीरुलउमरा कहे जाते हो, गुलाम से सिपहसालार बने हो बाद-

शाह भी बन जाओगे !" अमीर बोला "मैं मालिक को दगा दूं, ऐसा नमकहराम नहीं हूं !" जोहरा बोली "बस ! हो चुका ! माफ करना ! अमीर ! मैं जाती हूं ! मैं समझ गई ! मेरी किस-मत ! लेकिन आज से याद रखना कि किसी को जान देने का वायदा करने से पहिले गौर कर लेना !" जोहरा चलने लगी। अमीर एक दम दौड़ कर उसके पैरों पर गिर कर बोला "प्यारी ! यह देह तेरी है, जो चाहे सो कर !" दोनों का प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। जब अल्पगीन को खबर हुई तो वह क्रोधित न हुआ किन्तु प्रसन्न हुआ। दोनों की शादी कर दी गई। कई वर्ष बाद वह मुसाफिर, वह गुलाम, वह अमीर, वह जोहरा का पति गजनी का बादशाह हुआ।

मुसाफिर राज वंश का था, आपत्ति में भटक रहा था, सिंह और लुटेरों ने उसे लूट लिया तो भी उसका उत्तम स्वभाव न गया। गुलाम बनाकर दो स्थानों पर बेचा गया, तो भी धीरे २ बढ़ कर सैन्यापति हुआ और राजकन्या से विवाह करके अन्त में राजा हुआ। इसी प्रकार जीव मुसाफिर है, अज्ञान की आपत्ति में पड़ा हुआ है, काम रूप सिंह और क्रोध, लोभादि लुटेरों से लूटा गया है, जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में गुलाम बना हुआ है, तो भी अपने पूर्व स्वभाव के अनुसार बढ़ता ही जाता है। सद्गुरु 'अहं ब्रह्मास्मि' रूप अहंग्रह—निर्गुण उपासना का उपदेश करता है, इससे जीव शांति रूप राज कन्या के साथ विवाह करता है और मोक्ष रूप साम्राज्य को प्राप्त होता है। जीव को स्वप्नावस्था में उप-देश मिलता है और उसका फल जाग्रत् में होता है। महावाक्य

का उपदेश सांसारिक जाग्रतावस्था में मिलता है। सांसारिक–व्यवहारिक जाग्रतावस्था पारमार्थिक सत्ता में स्वप्न रूप है और पारमार्थिक सत्ता उसकी अपेक्षा से जाग्रत् है. इस लिये निर्गुण अहंग्रह उपासना कल्पना की अवस्था का उपदेश होते हुये भी उसका फल यथार्थ जाग्रत् यानी पारमार्थिक में होता है। इस दृष्टांत से उपासना करने की अवस्था और फल की अवस्था का अन्तर स्पष्ट रीति से समझ में आता है। जिस स्वप्न और स्वप्न के व्यवहार को लोग झूँठा कहते हैं, वह ही स्वप्न कभी २ भविष्य सूचक होने से, भविष्य में यथार्थ होता है। जैसा हाल मुसाफिर का हुआ इसी प्रकार अहंग्रह—निर्गुण उपासना करने वाले को अन्तिम फल होता है।

निर्गुण उपासना जब अहंग्रह यानी अभेद रूप की होती है तब ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है। उपासक जब अपने को उपास्य से भिन्न न रखकर उपासना करे, वह अभेद उपासना है। कोई इस प्रकार निर्गुण–अभेद उपासना तो करे परन्तु कामना का प्रतिबंध हो तो परब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती, अपरब्रह्म–कार्यब्रह्म–हिरण्यगर्भ की प्राप्ति होती है। वहां के भोग भोग कर जब ज्ञान होता है तब परब्रह्म–कारणब्रह्म को प्राप्त होता है, यह ही अंतिम कैवल्य है। निर्गुण उपासना के फल के आरंभ में ही सगुण उपासना का फल है यानी सगुण ब्रह्मोपासना भी निर्गुण में ले जाने वाली है। निर्गुण उपासना किस २ प्रकार से होती है, यह नीचे दिखलाते हैं:—

सब पदार्थों में नाम और रूप दोनों होते हैं। रूप नाम से भिन्न नहीं है और नाम रूप से भिन्न नहीं है। नाम और रूप साथ २

रहते हैं। नाम अथवा रूप एक नहीं रहता इसलिये जितने रूप हैं सब नाम स्वरूप ही हैं नाम रूप से भिन्न नहीं होता। व्यवहार का हेतु नाम है। रूप बदलता रहता है, नाम नहीं बदलता। रूप का नाश होने पर भी नाम रहता है, इससे सिद्ध होता है कि रूप यानी आकार नाम से भिन्न नहीं है परंतु नाम के सामने रूप तुच्छ है। घट अनेक हैं, अनेक आकृति वाले हैं, उन सबका 'घट' ऐसा नाम एक है इस लिये नाम रूप से विशेष व्यापक हैं। जितने नाम हैं, ॐकार से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि ॐकार से ही सब वर्ण हुये हैं, ॐकार से ही सबका उच्चारण है, इस लिये नाम ॐकार से बाहर नहीं हैं। लोक और वेद में के सब शब्दों की उत्पत्ति ॐकार से है, ऐसा श्रुति में प्रसिद्ध है। कार्य कारण से भिन्न नहीं होता। ॐकार सब नामों का कारण है, और सब नाम ओंकार के कार्य हैं, सब रूप नाम के भीतर समा जाते हैं, सब नाम ॐकार में समा जाते हैं, ॐकार ही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि सर्व रूप ॐकार ही है। ब्रह्मांड में जितना जो कुछ है, सब नाम रूप का फैलावा है, जब ॐकार सिद्ध हुआ तब सब न रहे यानी ॐकार ही सर्व रूप हुआ। इसी प्रकार ब्रह्म सर्व स्वरूप है इस लिये ॐकार ही ब्रह्म है, अथवा ॐकार ब्रह्म का वाचक है और ब्रह्म ॐकार का वाच्य है। वाचक का वाच्य से भेद नहीं है इसलिये वाच्य एक ब्रह्म ही शेष रहता है।

दूसरी रीति से विचार किया जाय तो नाम रूपादि सब ब्रह्मांड माया और माया का फैलावा है। अक्षरब्रह्म में सब ब्रह्मांड अध्यस्त है। अध्यस्त का अधिष्ठान से वस्तुतः भेद नहीं है, इस प्रकार सब ब्रह्म

है। सच्चा पदार्थ अधिष्ठान कहलाता है। सच्चे में भ्रांति से और का और दीखता है, ऐसा दिखावा अध्यस्त कहा जाता है। ब्रह्म अधिष्ठान है और सब ब्रह्मांड रूप ॐकार ब्रह्म में अध्यस्त है। अधिष्ठान से अध्यस्त का अभेद है इसलिये ॐकार ब्रह्म स्वरूप ही है। इस प्रकार अपने को भिन्न न रखते हुये उपासना करे,

सारांश:—रूप नाम से भिन्न नहीं, रूप नाम में गुम हुआ। नाम ॐकार से भिन्न नहीं, नाम गया, ॐकार रहा, ॐकार परब्रह्म से भिन्न नहीं. ॐकार गया, परब्रह्म रहा।

दूसरी प्रकार से:—जो कुछ है सो अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूपमय है, इनके सिवाय दृश्य अदृश्य कुछ नहीं है। उनमें अस्ति, भाति और प्रिय तत्व स्वरूप हैं और नाम रूप उपाधि कृत हैं, जो अस्ति, भाति और प्रिय हैं, वह ही सच्चिदानन्द रूप है, वह ही परमात्मा है। नाम और रूप माया है, सच्चिदानन्द तत्त्व है और उसमें भ्रांति से नाम रूप दीखता है। रूप अनेक हैं और नाम एक है। जैसे अनेक प्रकार के घट वस्तु है, रूप है, और सब का नाम एक है इसलिये नाम विशेष व्यापक है। सब रूपों का समावेश नाम में है। नाम कारण है, रूप कार्य है; कार्य कारण से भिन्न नहीं होता इसलिये नाम से रूप भिन्न नहीं है। रूप तुच्छ है, नाम महत्व वाला है; रूप चले जाने पर नाम शेष रहता है और नाम में रूप लगता है; रूप उड़ गया, नाम रह गया। अपने सहित ऐसा अभेद चिन्तवन करे:—शरीर का रूप नाम में गया,

रहा नाम, नाम माया का है, सच्चिदानन्द स्वरूप में अध्यस्त है। सच्चे पदार्थ को अधिष्ठान कहते हैं, सच्चे में भ्रांति से दिखावे मात्र जो दीखे, उसे अध्यस्त कहते हैं। जिस में भ्रांति का दिखावा होता है, वह वस्तु यथार्थ होती है। अधिष्ठान से अध्यस्त भिन्न नहीं, नाम भी उड़ गया, सच्चिदानन्द रूप शेष रहा। सत्, चित् और आनंद तीन होते हुये भी तीन नहीं है, एक ही है; एक ही वस्तु को यथार्थ जानने के लिये संज्ञा रूप है। नाम में आनन्द है, नाम भी बहुत हैं, नामों में रहा हुआ आनन्द (किसी प्रकार का भी हो) एक है और विशेष व्यापक है। आनन्द अधिष्ठान है, नाम अध्यस्त है, अध्यस्त की भिन्न सत्ता न होने से अध्यस्त भी अधिष्ठान रूप ही है, नाम न रहा, आनन्द ही रहा। आनन्द चैतन्य से है, इसलिये चैतन्य आनन्द से सूक्ष्म है और विशेष व्यापक है। चैतन्य का सूक्ष्म स्वरूप सत्–होनापना है। सत् यानी होने से चैतन्य भिन्न नहीं, इसलिये सत् ही सत् है, सत् का अभेद चिन्तवन परब्रह्म का निर्गुण चिन्तवन है। अस्ति रूप सत् है, भाति रूप चैतन्य है और प्रिय रूप आनन्द है। सत् को असत् की अपेक्षा वाला सत् न समझना चाहिये। यह सत् भी लक्षक है, लक्षण नहीं है, उस से जो अभेद करता है, वह परम पद को प्राप्त होता है, यदि सत् को लक्षण समझ कर उपासना की जायगी तो उपासना सगुण हो जायगी, निर्गुण न होगी। निर्गुण उपासना में यह ही विशेषता है कि उस में विधि निषेध रूप सब गुणों–विशेषणों का उपसंहार करके यथार्थ का लक्ष पहुंचाया जाता है। सगुण उपासना में ऐसा नहीं होता।

तीसरी प्रकार से:—जितने स्थूल शरीर दीखते हैं, उन प्रत्येक के भीतर दो और शरीर हैं और एक एक का कारण है। कार्य का कारण में लय करते हुये अंतिम कारण जिसका और कोई कारण नहीं है. वह ही परब्रह्म है यद्यपि परब्रह्म किसी का कारण नहीं है, भ्रांति में ही वह सब का कारण है। स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म शरीर है, स्थूल मिथ्या है। स्थूल की अपेक्षा से सूक्ष्म सच्चा है, स्थूल गया, सूक्ष्म रहा। शूक्ष्म शरीर कारण शरीर का कार्य है और कारण शरीर सूक्ष्म शरीर का कारण है, । कारण से कार्य की सत्ता भिन्न नहीं है भिन्नता दीखना भ्रांति हैं, इसलिये कारण शरीर सत् है और कारण शरीर की अपेक्षा से सूक्ष्म शरीर भिथ्या है। मिथ्या को हटाने से कारण शरीर ही शेष रहा। कारण शरीर मायिक है. इसलिये मिथ्या हे। कारण शरीर जिस में अध्यस्त है, वह परब्रह्म ही माया का अधिष्ठान होने से सत्य है। अधिष्ठान से अध्यस्त की भिन्न सत्ता न होने से ही परब्रह्म माया और माया के के कारण कारण शरीर का कारण है। कारण शरीर परब्रह्म की अपेक्षा से मिथ्या है, अब कारण शरीर का कारण अधिष्ठान रूप परब्रह्म रहा। माया मिथ्या होने से है नहीं, तब परब्रह्म माया का अधिष्ठान नहीं और माया और माया के कारण शरीर का कारण भी नहीं; क्योंकि कारण तो माया में समझा जाता था, माया की अपेक्षा से समझा जाता था; इसलिये अब परब्रह्म किसी का कारण न रहा और न कोई उसका कार्य रहा। परब्रह्म असत् नहीं है और सत् असत् की अपेक्षा से कहा जाता था। जब असत् न रहा तब अपेक्षा रहित सत् किस प्रकार कहा जाय ? इसलिये सत्

असत् से विलक्षण, सब का अपना आप, सब का प्रकाशक परब्रह्म है, वह ही मेरा और प्रत्येक का सच्चा स्वरूप है, ऐसी उपासना करे, अथवा शेष रहा हुआ मैं ही हूँ इस प्रकार अहंग्रह उपासना करे अभेद चिन्तवन भी वह ही है। ऊपर जिस प्रकार एक व्यष्टि से लेकर परब्रह्म तक पहुंचे थे उसी प्रकार समष्टि और व्यष्टि की एकता करते हुये जो सब का अंतिम कारण है, जिस का और कोई कारण नहीं है, जिस में कार्य कारण का भी संभव नहीं है, वह ही मैं हूं, ऐसा चिंतवन करता रहे।

चौथी रीति से इस प्रकार उपासना होती है:—स्थूल शरीर पांच कोशमय है और एक २ के भीतर एक २ कोश हैं। पांच कोश शरीर के हैं, शरीर माया का है, माया ब्रह्म में भासती है, माया त्रिगुणात्म है, माया के तीन गुण और पांच तत्त्वों से ब्रह्मांड का सब फैलावा है। तीन गुण और पांच तत्त्वों से ही तीनों शरीर और उन में रहे हुए पांच कोश हैं। स्थूल शरीर में अन्नमय कोश है, यह स्थूल सब का स्थूल है। अन्नमय कोश प्राणमय कोश से चलता है, अन्नमय कोश का जीव प्राणमय कोश है, प्राण न हो तो अन्नमय कोश नहीं जीता इस लिये अन्नमय कोश ठीक नहीं प्राणमय कोश ही ठीक है, ऐसे ही प्राणमय कोश का जीव मनोमय कोश है; क्योंकि मनोमय कोश के आधार पर प्राणमय कोश चलता है, इस लिये प्राणमयं कोश ठीक नहीं है, मनोमय कोश ही ठीक है। अब मनोमय कोश भी स्वतंत्र नहीं है, विज्ञानमय कोश के आधार पर चलता है, इस लिये मनोमय कोश ठीक नहीं है, विज्ञानमय कोश ही ठीक है। विज्ञानमय कोश आनन्दमय कोश से हुआ है इस लिये विज्ञानमय कोश भी ठीक नहीं है, आनन्दमय

कोश ही ठीक है, आनन्दमय कोश माया से बना है इसलिये आनन्द-
मय कोश भी ठीक नहीं है, माया ही ठीक है, जैसे मेरे पांच कोशों
का हाल है इसी प्रकार सब ब्रह्मांड के पांचों कोशों का हाल है।
उन सब का कारण एक माया है। जब आद्य माया में आय
तब न मैं हूँ, न तू है, न बन्धन है; क्योंकि आद्य माया में द्वै
भाव नहीं है। अब रही माया, माया भूल है, झूंठी है, भ्रांति है
व्यर्थ है। वस्तुतः माया कुछ है नहीं, तब उस माया-भूल का जो
आधार है और भूल के बने हुये सब का जो आधार है, वह है
अबाधित सत्य है, जिसमें कभी विकार नहीं होता, वह ही परब्र
है, वही मेरा और सब का सच्चा स्वरूप है! मैं जीव नहीं हूँ, क्यों
जीव विकारी है, मैं विकार रहित हूँ। विकार रहित में बन्धन न
होता इसलिये मैं बन्धन रहित हूं! जिस अज्ञान से माया औ
बन्धन दीखता था, उस अज्ञान तक की मुझ में सिद्धि नहीं होत
सर्वाधार, अचिंत्य, अखण्ड आदि विशेषणों से अधिकारी जिस
लक्ष करते हैं, वह मैं हूँ! मुझ एक ही में माया से सब का भास हो
है! मुझ में माया नहीं है, मैं ही सब के हृदय में विराजमान
मुझ से सब हैं, मैं ही सब हूं! कथन नाम मात्र है, वस्तुतः मे
कथन नहीं हो सक्ता! मैं सदा ही मोक्ष स्वरूप हूँ, बोध स्व
हूं, सबका अधिपति हूं, साक्षी हूं! शास्त्र में कहा हुआ स
दानन्द मुझ से अन्य कोई नहीं! मुझ में मेरे तेरे का व्यवहार
है! मैं आनन्द का समुद्र, तेज की राशि और सत्य का भी
हूँ! मैं नमस्कार, स्तुति से रहित हूं, क्योंकि मैं ही मैं हूँ,
कोई नहीं! व्यापक, प्रकाशक, व्यष्टि, समष्टि, है और नहीं,

मेरे ही स्वरूप हैं ! इस प्रकार अभेद चिंतवन अहंग्रह निर्गुण उपासना होती है।

अथवा स्वप्न में जैसे एक ही अनेक होकर प्रतीत होता है। वहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी दीखती है परंतु त्रिपुटी का अभाव है। जिसे स्वप्न आया है, उसके सिवाय वहां कोई नहीं है। निद्रा के दोष से एक का अनेक दीखता है, भोक्ता, भोग्य और भोग बनता है, राग द्वेष करता है। स्वप्न का सच्चा भेद स्वप्नावस्था में मालूम नहीं होता, जागते ही स्वप्न का भांडा फूट जाता है। इसी प्रकार जाग्रत् भी है क्योंकि शास्त्र और संत जाग्रत् जगत् को स्वप्न तुल्य कहते हैं। ज्ञान रूपी जाग्रत् होते ही जाग्रत् रूपी स्वप्न का भी भांडा फूट जाता है। जो जो मैं देखता हूं, वह सब मेरे सिवाय कुछ नहीं रहता। मुझ से ही सब की सिद्धि है, मैं विकार को प्राप्त नहीं होता, भूल से अपने को विकारी समझता था; भूल मुझ में है नहीं, न मुझे विकारी कर सक्ती है, अखंड ब्रह्मांड मेरा ही विलास है ! मैं ही सच्चिदानन्द और अबाधित तत्त्व हूँ ! मेरा शरीर नहीं, मेरे पांच कोश नहीं, मुझ में तीन गुण नहीं, भूत, भविष्य, वर्तमान नहीं ! मैं तू का झगड़ा नहीं और बंध मोक्ष की कल्पना नहीं, रात्रि दिन का अंधेरा उजाला नहीं, मैं जैसा हूँ, ऐसा ही हूं, ! सब कुछ मैं ही हूं ! सब रचना मुझ से होते हुये भी मैं विकार को प्राप्त नहीं होता ! जैसे जादू की दृष्टि में तमाशा दीखे, ऐसे ही जगत् द्रष्टि से दीखता हुआ जगत् भी द्रष्टा से भिन्न नहीं है ! दृष्टि के द्रष्टा का कभी लोप नहीं होता! भेदभाव भूल का है ! जिस में है, उसमें है ! मुझे कुछ लेन देन नहीं है ! मेरे पास माया नहीं, माया का महत्व नहीं, तब मुझ

में माया के विकार कहां ! ! मेरे समान कोई वस्तु नहीं, से अन्य वस्तु नहीं ! जो कहो सो सब मैं ही हूँ ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश जो महान् देव कहलाते हैं, वे मुझ से भिन्न कहां ! अरे ! वे मेरे नेत्र की एक पलक मात्र हैं ! वेद, वेद्य सभी मैं हूं और विचार से तो वेद, वेद्य अथवा अवेद्य भी नहीं हूं ! मुझ में लोग, सगुण, निर्गुण और लोकालोक की भले कल्पना किया करें, मैं तो मैं ही हूं ! बस ! चुप !!

अथवा ॐकार की अभेद उपासना इस प्रकार करे:—क्योंकि ॐकार का ब्रह्म से अभेद है, ऐसे ही आत्मा से भी अभेद है, इस लिये अभेद चिंतवन करे। ब्रह्म के चार पाद हैं; विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और तत्पद का लक्ष्यार्थ ईश्वरसाक्षी। ऐसे ही आत्मा के चार पाद हैं, विश्व, तैजस, प्राज्ञ और त्वंपद का लक्ष्यार्थ जीवसाक्षी—कूटस्थ। स्थूल व्यष्टि का अभिमानी विश्व और स्थूल समष्टि का अभिमानी विराट है इस लिये विश्व विराट से भिन्न नहीं हैं। दोनों की जाग्रतावस्था है। व्यष्टि और समष्टि के सातों अंग और उन्नीस मुख भी समान हैं इस लिये विश्व ही विराट है। ऐसे ही अकार से भी विश्व और विराट का अभेद है। ब्रह्म के चार पादों में प्रथम विराट है आत्मा के प्रथम पाद में विश्व है, ऐसे ही ॐकार के प्रथम पाद में अकार है। तीनों के समान धर्म होने से विश्व, विराट और अकार का अभेद चिंतवन करे। जैसे विराट का भेद नहीं है, ऐसे ही तैजस से हिरण्यगर्भ का नहीं है। दोनों की उपाधि सूक्ष्म है, दोनों एक ही हैं, ऐसा जानता ॐकार की दूसरी मात्रा जो उकार है, उसका भी उन से अभेद कर चिंतवन करे. क्योंकि आत्मा के चार पादों में दूसरा

तैजस है ब्रह्म के चार पादों में दूसरा पाद हिरण्यगर्भ है और ॐकार की दूसरी मात्रा उकार है, इस प्रकार तीनों में समान धर्म होने से तीनों को एक समझे। प्राज्ञ को ईश्वर रूप जाने; क्योंकि प्राज्ञ की उपाधि कारण है, ईश्वर की उपाधि भी कारण है। ईश्वर और प्राज्ञ ब्रह्म और आत्मा के तीसरे पाद हैं और ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, इन तीनों को एक समझे। प्राज्ञ प्रज्ञानघन है क्योंकि उस में जाग्रत् और स्वप्न के सब ज्ञान अविद्या रूप घन भाव को प्राप्त होते हैं। श्रुति प्राज्ञ को आनन्दभुक् कहती है। अविद्या से ढके हुये आनन्द को प्राज्ञ भोगता है इस लिये आनन्दभुक् कहा जाता है। जैसे विश्व और तैजस का भोग त्रिपुटी में होता है ऐसे ही प्राज्ञ का भोग भी त्रिपुटी में ही होता है; परंतु वह त्रिपुटी घन भाव में दबी हुई होने से प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होती। विश्व की स्थूल, सूक्ष्म और अज्ञान तीन उपाधियां हैं, तैजस की सूक्ष्म और अज्ञान दो उपाधियां हैं और प्राज्ञ की एक अज्ञान ही उपाधि है। इस प्रकार उपाधियों की न्यूनता से विश्व, तैज और प्राज्ञ में भेद है, पारमार्थिक स्वरूप से तीनों में भेद नहीं है। तीनों में रहा हुआ चैतन्य पारमार्थिक में उन से संबंध रहित, उन का अधिष्ठान उसको तुरीय कहते हैं। वह तुरीय बाहर भीतर से जानने वाला अथवा प्रज्ञानधन नहीं है, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों का विषय नहीं है, और बुद्धि का भी विषय नहीं है। ऐसे तुरीय को परमात्मा का चौथा पाद ईश्वर साक्षी समझे। इस प्रकार लौकिक और पारमार्थिक आत्मा के दो स्वरूप कहे; तीन लौकिक अपरमार्थिक हैं और चौथा पाद पारमार्थिक है। ऐसे ही ॐकार के भी दो स्वरूप हैं;

अकार, उकार और मकार अपरमार्थिक स्वरूप हैं और तीनों
व्यापक अस्ति, भाति और प्रिय रूप अधिष्ठान चैतन्य पारमार्थि
स्वरूप है, उसको ही श्रुति में अमात्र स्वरूप कहा है। उस परमा
स्वरूप में मात्रा का विभाग नहीं है। ऐसे दोनों प्रकार
ॐकार का दोनों प्रकार के आत्मा से अभेद है। व्यष्टि सम
सहित जो स्थूल प्रपंच है, उसके सहित विश्व और वि
का अकार से अभेद जाने। आत्मा के पादों में विश्व आ
है, ॐकार की मात्राओं में अकार आदि है। सूक्ष्म प्र
सहित हिरण्यगर्भ रूप तैजस है उसको उकार समझे क्यों
तैजस भी दूसरा है और उकार भी दूसरा है। का
उपाधि सहित प्राज्ञ ईश्वर है, उस को मकार रूप समझे क्यों
जैसे ईश्वर प्राज्ञ तीसरा है, ऐसे ही मकार भी तीसरा है। ती
में अनुगत परमार्थ रूप तुरीय को ॐकार की तीन मात्राओं
अनुगत समझे और परमार्थ से उन तीनों से उस को भिन्न
जैसे विश्वादि तुरीय में अनुगत हैं ऐसे ही अकार आदि
मात्राओं में अमात्र अनुगत है, इस प्रकार ॐकार के अमात्र
और तुरीय को एक समझे। इस प्रकार सब को एक करते
पारमार्थिक अद्वय तत्त्व की अहं सहित उपासना करे, यह नि
उपासना है, जिन २ की एकता करने को कहा है, उन को
करके एक हुये एक को भी छोड़ कर परमार्थ को ग्रहण करे।

लयचिंतवन:—विश्व रूप अकार तेजस रूप उकार में से
है, जो जिस में से हुआ होता है, उसी में उस का लय होता
विश्व रूप अकार का तैजस रूप उकार ही रहा। इसी प्र
तैजस रूप उकार प्राज्ञ रूप मकार में से हुआ है। तैजस रूप

का प्राज्ञ रूप मकार में लय किया तो प्राज्ञ रूप मकार रहा। प्राज्ञ रूप मकार तुरीय रूप अमात्र में से हुआ है, प्राज्ञ रूप मकार का तुरीय रूप अमात्र में लय किया तो तुरीय रूप अमात्र ही शेष रहा। तुरीय रूप अमात्र परमार्थ स्वरूप है, उस की सत्ता से सब प्रकाशित होते हैं, वह ही मैं हूँ, इस प्रकार चिंतवन करे। स्थूल का लय सूक्ष्म में होता है, सूक्ष्म का लय कारण में होता है और कारण का लय तुरीय में होता है। विश्व स्थूल है, तैजस शूक्ष्म है, प्राज्ञ कारण है, तुरीय परमार्थ स्वरूप है, इस प्रकार विश्व का लय तैजस में, तैजस का लय प्राज्ञ में और प्राज्ञ का लय तुरीय में होता है। यह समष्टि व्यष्टि सब का लय है, इस प्रकार ॐकार के अमात्र रूप परमार्थ स्वरूप में सब का लय हुआ, शेष जो रहा, सो मैं हूँ, इस प्रकार शरीर के भान को हटाते हुये एकाग्र चित्त से चिंतवन करे। इस को लय चिंतवन कहते हैं।

स्थावर, जंगम रूप जो कुछ है, हुआ है और होगा, उस सब का पारमार्थिक स्वरूप असंग, अद्वय, असंसारी, नित्य मुक्त, निर्भय और ब्रह्म रूप सच्चिदानन्द जो ॐकार का पारमार्थिक स्वरूप है, वह ही मैं हूँ, ऐसा वारंवार चिंतवन करे। ऐसा चिंतवन करने से ज्ञान होता है और ज्ञान से मोक्ष होता है। सब उपासनाओं में ॐकार—ब्रह्म की निर्गुण उपासना सब से श्रेष्ठ है। चिंतवन करते २ जीव भाव हो गया है और वर्ण, आश्रम, नाम, योग्यता आदिक भी वारम्वार चिंतवन-मनन करने से हुये हैं। जब झूंठा चिंतवन करते २ झूँठा भाव दृढ़ होगया है तो त्रिकालाबाधित सत्य का प्रति दिन चिंतवन करने से जो प्रथम से ही प्राप्त है ऐसा पारमार्थिक

स्वरूप प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है ? यद्यपि ब्रह्म—ॐकार का चिंतवन ब्रह्म—ॐकार रूप नहीं है तो भी यथार्थ फल देने वाला है क्योंकि वह चिंतवन मिथ्या ऐसे जीव भाव का विरोधी होने से जीव भाव का निवर्त्तक है, ब्रह्म चिंतवन से बोध होता है और बोध से स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है।

उपासना अनेक प्रकार से होती है। उपासक की एकाग्रता के अनुसार उपासना का फल होता है, यदि उपासना मंद हो तो कर्म का फल देती है, सगुण हो तो मंद उपासना से श्रेष्ठ है, और अभेद रूप हो तो उपासना का फल देती है, और अति श्रेष्ठ अहंग्रह अभेद निर्गुण उपासना हो तो ज्ञान के फल को देने वाली होती है।

कामना युक्त उपासना का फल परलोक यानी स्वर्ग प्राप्त होना है। यह उपासना कर्म स्वरूप है, शास्त्र की विधि और ज्ञान के अनुसार इसका फल होता है, ऐसी उपासना भेद उपासना है, वह, प्रतीक (तटस्थ) अथवा अंगांगी होती है। एक में दूसरे का भाव हो, उसे प्रतीक कहते हैं और जिसमें अंग का अवलम्बन यानी सहारा लिया जाता है, वह अंगाश्रित उपासना है, ये सब भेद उपासनायें हैं और आकार वाली हैं। उनका फल स्वर्ग में बुद्धि के अनुसार इष्ट प्राप्ति रूप होता है। यह फल चार प्रकार का है, उसको चार प्रकार की मुक्ति भी कहते हैं:—सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि, सालोक्य में इष्ट के लोक में वास करना, सारूप्य में इष्ट के रूप के समान रूप का होना, सामीप्य में इष्ट के समीप रहना और सार्ष्टि में इष्ट के समान भोगों की प्राप्ति होना, इस प्रकार फल होता है, यह मुक्ति व्यक्ति भाव सहित होती है इसलिये

यथार्थ मुक्ति नहीं है, आपेक्षिक है क्योंकि उसकी उत्पत्ति कर्म से है। जिसकी उत्पत्ति कर्म से होती है, वह नाश रहित नहीं होती।

ब्रह्म लोक की कामना से जो उपासना की जाती है, वह कर्म से ऊंचे दर्जे की है। परलोक के ज्ञान सहित कर्म उपासना कही जाती है। ब्रह्म लोक अपरब्रह्म है। कुछ ज्ञान लिये हुये पुण्य कर्म करने वाले ब्रह्म लोक को प्राप्त होते हैं—ब्रह्म लोक में जाना होता है, जाने की क्रिया कर्म विना नहीं होती, उपरोक्त उपासना में कर्म होता है और ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान के संस्कार होते हैं इसलिये वह कर्म से बढ़कर उपासना की श्रेणी में है, यह उपासना अभेद भाव से करने की है। यदि अभेद भाव से न की जायगी तो स्वर्ग प्राप्ति के फल वाली हो जायगी। अपरब्रह्म के जो २ गुण शास्त्र में सुने हैं, उनके अनुसार उपासना होने से सगुण उपासना है। ब्रह्म की निर्गुण उपासना में परब्रह्म के गुण लक्षक हैं और सगुण उपासना में ब्रह्म विशिष्ट—ब्रह्म इन्हीं गुण वाला है इसका—लक्षक है, ऐसी उपासना सगुण उपासना कही जाती है। इसके उपासक को उत्त-रायण मार्ग से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। ईश्वर से अभेद होने से ईश्वर से कुछ कम सामर्थ्य प्राप्त होता है और ब्रह्म से अभेद होने में परम पद प्राप्त होता है। परब्रह्म की उपासना ज्ञान द्वारा मोक्ष का हेतु है इसलिये वह ज्ञान की श्रेणी में है। जो फल ज्ञानी को होता है, वह ही फल उस उपासक को होता है, यह उपासना अभेद, अहंग्रह और निर्गुण है। मुमुक्षुओं को समझने के लिये शास्त्र में विधि और निषेध रूप से परब्रह्म के जो गुण बताये हैं, उन गुणों से परब्रह्म का लक्ष करके उपासना की जाती है। उसका

फल कैवल्य–ब्रह्म प्राप्ति है, ऐसा उपासक जब तक शरीर रहता है तब तक जीवन्मुक्त है यानी ईश्वर से अभेद रूप से होता है–शरीर रहते हुये भी ब्रह्म के सुख का अनुभव करता है और प्रारब्ध समाप्त होने पर निर्वाण को प्राप्त होता है। यह सद्योमुक्ति है और ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्म लोक की स्थिति पर्यन्त ऐश्वर्य का भोग करके ब्रह्मा के साथ निर्वाण को प्राप्त होना क्रम मुक्ति कही जाती है। उत्तरायण मार्ग से जाकर मुक्त होना क्रम मुक्ति है और सीधा व्यापकपने को प्राप्त होना सद्योमुक्ति है।

उपासना का कोष्टक।

कामना	ऐश्वर्य की				ब्रह्म लोक की	ब्रह्म की
स्वरूप	कर्म				उपासना	ज्ञान
उपासना	भेद				अभेद	
अवलम्बन	प्रतीक–अंगाश्रित				अहंग्रह	
कैसी	साकार				सगुण	निर्गुण
फल	सालोक्य	सारूप्य	सामीप्य	सार्ष्टि	ब्रह्मलोक	ब्रह्म

सगुण ब्रह्मोपासक भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना के समान ही उपासना करता है परन्तु बुद्धि की मंदता से जो गुण लक्ष पहुंचाने के लिये हैं, उन गुणों को वह ब्रह्म का स्वरूप समझ कर उपासना करता है इसलिये उसकी उपासना सगुण हो जाती है। जब जीव "मैं वैश्वानर हूँ" इस प्रकार वैश्वानर की अभेद उपासना करता है तब उसे वैश्वानर भाव की प्राप्ति रूप फल होता है. जब जीव 'मैं हिरण्य गर्भ हूँ' इस प्रकार से अभेद उपासना करता है तब उसे हिरण्यगर्भ भाव की प्राप्ति रूप फल होता है. और जब जीव 'मैं ईश्वर हूं' इस प्रकार अभेद उपासना करता है तब ईश्वर भाव की प्राप्ति रूप फल होता है। श्रुति और स्मृतियों में ॐकार के प्रथम और दूसरे पाद रूप वैश्वानर और हिरण्यगर्भ को ईश्वर रूपता कही गई है इसलिये वे दोनो उपास्य हैं। श्रुति में कहा है:— "अधिकारी पुरुष वैश्वानर आदि जिस २ रूप विशिष्ट की उपासना करता है. उस २ भाव को प्राप्त होता है" पूर्ण उपासना से पूर्ण फल होता है और भाव की मंदता से ब्रह्म लोक की प्राप्ति रूप फल न होकर, कर्म रूप फल होता है, जो साकार उपासना में दिखलाया है। ऐसे ही निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले भी बुद्धि की मंदता के कारण निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त न होकर सगुण ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं। यदि निर्गुण उपासक को ब्रह्मलोक आदि की थोड़ी सी भी कामना शेष रह जाती है तो उस प्रतिवन्ध के कारण वह अपरब्रह्म—ब्रह्म लोक को ही प्राप्त होता है।

सगुण और निर्गुण ब्रह्म दोनों ही ॐकार रूप हैं। जो जैसा विवेकी होता है, वह उसी के अनुसार दोनों में किसी एक का आश्रय ग्रहण करता है। ॐकार की अ उ और म तीनों मात्राओं

में से जो अकार का चिंतवन करता है, वह उससे संस्कार युक्त होकर जगत् में जल्दी से जन्म धारण करता है। ऋग्वेद के मंत्र उसको मनुष्य लोक में ले आते हैं, यहां वह तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त होकर अपनी महिमा का अनुभव करता है। इस उपासना में अकार मात्रा है, ऋग्वेद है, अग्नि ऋषि है, ब्रह्म देवता है, भूः अधिदेव है और जाग्रतावस्था अध्यात्म रूप है। जो अधिकारी अकार, उकार रूप दोनों मात्राओं का चिंतवन करता है, वह यजुर्वेद के मंत्रों से अन्तरिक्ष में गमन करता है, चन्द्र लोक को प्राप्त होता है, चन्द्र लोक यानी स्वर्ग में विभूतियों का अनुभव करके मनुष्य लोक में फिर से जन्म लेता है। इस उपासना में ॐकार की दूसरी मात्रा उकार है, यजुर्वेद है, वायु ऋषि है, विष्णु देवता है, भुवः अधिदेव है और स्वप्नावस्था अध्यात्म है, जो कोई ॐकार की तीनों मात्राओं से परमात्मा का चिंतवन करता है, वह तेज रूप सूर्य लोक में उत्पन्न होता है, जैसे सर्प कंचुकी को छोड़ मुक्त होता है ऐसे ही पापों से मुक्त होता है। साम के मंत्रों से वह ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है, वहां जाकर जीवों के सूक्ष्म से भी महान् सूक्ष्म सब शरीरों में रहे हुये पुरुष को देखता है और वह से चन्द्र लोक गये हुये पुरुष के समान पुनरावृत्ति को प्राप्त नहीं होता। इस उपासना में ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, सामवेद है, सूर्य ऋषि है, महेश देवता है, स्वः अधिदेव है और सुषुप्ति अवस्था अध्यात्म रूप है। इस प्रकार तीनों मात्राओं की उपासना से अपरब्रह्म–ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

एक ग्राम में कई वर्षों से अनुकूल वर्षा नहीं होती थी इसलिये खेती न होने से वहां के लोग दुखी थे। उस ग्राम में पांच मित्र

रहते थे, वे भी अन्न, पानी और वस्त्रादि से दुखी थे। वे पांचों कुटुम्ब वाले थे और कुटुम्ब में उनका प्रेम भी था परन्तु आप जानते हैं कि जब शरीर पर आपत्ति आती है, भूखा मरना पड़ता है तब कुटुम्ब आदि का प्रेम भी उड़ जाता है और यह ही सूझती है कि किसी प्रकार अपना पेट भरे! पांचों मित्र ग्राम छोड़ कर कहीं परदेश जाने का विचार करने लगे, सबने निश्चय किया कि परदेश में ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं, इस भुक्कड़ ग्राम में रहना ठीक नहीं है, फल रहित वृक्ष को त्याग कर ही पक्षी सुखी होते हैं, गड्ढे के मेंढक के समान हमको गड्ढे में पड़े रहना उचित नहीं है, प्रयत्न करने पर ईश्वर की कृपा से भूख के दुःख की निवृत्ति होगी। उन पांचों में दो क्षत्रिय, दो वैश्य और एक शूद्र था, प्रथम क्षत्रिय बोला "मित्रो! मेरा क्षत्रियपना इस ग्राम में काम नहीं आता! यहां शस्त्रादिक नहीं हैं और युद्ध का मौका भी नहीं है! अब तो मैं भूख के दुःख से ही लड़ूंगा! उसके साथ ही युद्ध कर के मैं अपना क्षत्रिय रक्त दिखलाऊंगा!" दूसरा क्षत्रिय बोला "भाई! तेरा कहना सच्चा ही है, इस ग्राम में से निकले बिना कुछ हो नहीं सक्ता! जो इस लोक में और अपने कुटुम्बियों में रहना न चाहो तो किसी अच्छे शहर में चलना चाहिये, और वहां शूर-वीरता दिखला कर सुखी होना चाहिये!" प्रथम वैश्य बोला "मित्रो! तुमने ठीक बात कही! न यहां धन है, न कुछ रोजगार है, खेती की जमीन भी अच्छी नहीं!" दूसरा वैश्य बोला "भाई! सच कहा! मूल्यवान् बीज को भी यहां की जमीन हजम कर जाती है! घास फूंस बिना गैया भैंसें भी दूध नहीं देतीं, ऐसी दुष्ट भूमि को तो छोड़ना ही भला है!" शूद्र बोला "यहां कोई श्रीमान्

ही नहीं है ! श्रीमान् विना नोकर कौन रक्खे ? विना नोकरी हम जैसों का पोषण कैसे हो ? किसी समृद्धि वाले शहर में चलना चाहिये, जहां किसी सज्जन की नोकरी करके सुख की प्राप्ति हो !" ऐसा कह पांचों निश्चित किये हुये समय पर अपने २ कुटुम्ब को छोड़ कर विना कहे सुने ही शहर से चल दिये,

एक थोड़े पानीकी नदी को पार करने के बाद थोड़ी दूर चलने पर एक शहर आया। उस शहर का नाम रूपनगर था। उस में व्यापार रोंजगार अच्छा था, बाजार में रुपयों का झन झनाहट हमेशा हुआ करता था ! पांचों मित्र उस शहर में पहुंच कर एक धर्म शाला में टिके। उस शहर की प्रजा सुखी थी, खाने, पीने, पहिनने, ओढ़ने का आराम था। सब लोग सुखी होने से वहां नोकरों का टोटा था, सब लोग नोकर ढूँढते थे परन्तु इच्छानुसार नोकर नहीं मिलता था। धर्म शाला में पांच परदेशी आकर टिके हैं, श्रीमानों को यह खबर मिली, नोकर ढूँढते हुये वे लोग वहां पहुंचे और कहने लगे "तुम में से जिस किसी को नोकर रहने की इच्छा हो तो हम नोकर रख सक्ते हैं।" दोनों क्षत्रिय बोले "हम राजपूत हैं, दासत्व नहीं कर सक्ते, दासत्व करने को हम नहीं आये हैं !" एक वैश्य ने कहा "मैं तो व्यापार करूंगा ! यदि इस शहर में अनुकूलता प्राप्त न होगी तो दूसरे शहर में जाकर धन्धा करूंगा !" दूसरा वैश्य बोला "मैं वैश्य हूँ, शूद्र का कार्य मुझ से नहीं हो सक्ता !" शूद्र ने कहा "मैं नोकरी कर सक्ता हूं !" ऐसा सुनते ही एक साहूकार ने हाथ पकड़ लिया ! दूसरे साहूकार ने दूसरा हाथ पकड़ लिया ! दोनों अपनी २ तरफ खेंचने लगे ! एक ने कहा

"पच्चीस रुपये दूंगा !" दूसरे ने कहा "चालीस दूंगा !" तीसरा जो कुछ दूर खड़ा था, बोल उठा "चल मेरे साथ ! मेरे यहां नोकर रह ! मैं पचास रुपये माहवारी तनखा दूंगा !" शूद्र खुशी होगया और उसके साथ जाने को तैयार हो अपने चारों साथियों से बोला "मित्र ! मेरा ठिकाना लग गया है, अब मैं सुखी होऊंगा, आप अपनी इच्छानुसार रहो या जाओ, मैं तो नौकरी पर जाता हूं !"

एक साहूकार ने दूसरे वैश्य से कहा "मेरे यहां मुनीमगीरी की नोकरी है, मुनीमगीरी करने में वैश्य को कोई आपत्ति नहीं है, मुनीमगीरी कोई नीच कार्य नहीं है !" दूसरा वैश्य तैयार हो गया। साहूकार ने कहा "मैं पचास रुपये तनखा दूंगा !" दूसरा साहूकार हाथ पकड़ कर खेंचता हुआ बोला "चलो ! मेरे यहां, मैं पछत्तर दूंगा !" तीसरे ने कहा "करना हो तो मेरे यहां मुनीमगीरी करो, मैं सौ रुपये दूंगा !" दूसरा वैश्य राजी हो गया और तीनों साथियों को छोड़ता हुआ बोला "मेरा रोजगार लग गया, अब मैं जाता हूँ !" प्रथम वैश्य ने कहा "भाई ! तू मेरे साथ धन्धा करने निकला है, अपनी तकदीर को बेच कर नोकरी क्यों करता है ?" दूसरे वैश्य ने अपने ग्राम में साल भर में भी कभी सौ रुपये नहीं कमाये थे इसलिये सौ रुपये की नोकरी से बहुत ही खुश था, कहने लगा "मिलते हुये लाभ को जो न ले, उसके शिर में जूतियां ! क्या खबर धंधा मिले या न मिले, मिल भी जाय तो भी क्या पता है कि उसमें फायदा ही हो, मेरे पास पूंजी है नहीं, धंधा होगा कैसे ? मैं तो मुनीमगीरी में ही मस्त हूं ! राम ! राम ! जाता हूं !"

दोनों क्षत्रिय और एक वैश्य दूसरे दिन वहां से चल दिये, मार्ग में प्रथम से कुछ विशेष जल वाली नदी को पार करके एक रात एक जंगल में रह कर दूसरे दिन एक शहर में पहुंचे । यह शहर प्रथम के शहर से विशेष समृद्धि वाला था, उसका नाम सुवर्ण पुर था। वहां सुवर्ण मुद्रा का ही चलन था, वहां के बाजार में जहां देखो वहां सुवर्ण मुद्राओं के ढेर के ढेर दीखते थे, वहां के मकान उत्तम थे, वस्त्रालंकार मनुष्यों पर ही नहीं, पशुओं पर भी थे। तीनों मित्र उस शहर में घूमने लगे। वहां के मनुष्यों से वे अलग रहते थे, इससे वहां के लोग जान जाते थे कि ये परदेशी हैं, शहर की शोभा को देखते हुये तीनों जा रहे थे। वहां के नियम के अनुसार प्रत्येक परदेशी को पुलिस की चौकी पर जाना पड़ता था। एक पुलिस वाला तीनों को थाने में ले गया। वहां उन का नाम, ठाम, ग्राम लिखा गया और यह भी लिखा गया कि वे किस इच्छा से सुवर्णपुर में आये हैं। वहां के रहने वालों ने उन तीनों को मार्ग में जाते हुये देखा था इस लिये उनमें से बहुत से पुलिस की चौकी पर पहुंच गये थे। वहां का प्रत्येक मनुष्य सज्जन था, किसी परदेशी को यह मालूम नहीं होता था कि मैं परदेश में हूँ किन्तु ऐसा अनुभव होता था कि मैं अपने मित्र, कुटुम्ब में ही हूँ। जब चौकी पर वैश्य ने यह लिखाया कि मैं धन्धे की इच्छा से यहां आया हूँ तब वहां के कितने ही व्यापरियों ने कहा कि आप खुशी से धन्धा कर सक्ते हैं, आप जो माल खरीदना चाहते हो, खरीद कर सक्ते हो। एक ने कहा "मेरे पास चांदी, सुवर्ण और जवाहरात बहुत हैं, आप

जितने चाहें खरीद कीजिये !" दूसरे व्यापरी ने कहा "उत्तम प्रकार के वस्त्र मेरे पास हैं, आप उन्हें खरीद सक्ते हो !" तीसरा बोला "मेरे पास मौज शौक की उत्तम २ चीजें हैं, आप क्या खरीदोगे ?" सब का विनय देख कर वैश्य को आश्चर्य हुआ। वह सब के सामने हाथ जोड़ कर नम्रता से बोला "आप मुझसे अपना माल खरीदने को कहते हो, परन्तु मैं एक गरीब वैश्य हूँ, मेरे पास खरीदने को दाम नहीं हैं !" एक श्रीमान् बोला "ओ हो ! तुम वैश्य हो, इतनी ही जामिनगीरी बहुत है, बिना दाम ही आप चाहो जितना माल खरीद सक्ते हो !" दूसरा श्रीमान् बोला "हम दाम को नहीं देखते ! मनुष्य को देख कर ही धन्धा करते हैं ! यह सच्चा देश है ! झूंठ छल यहां नहीं चलता ! आप बिना दाम ही खुशी से काम कीजिये ! यहां सब को संकल्प सिद्धि है ! संकल्प से ही सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त होता है ! धन्धा कीजिये !" वैश्य राजी हो गया और अपने साथियों से बोला "मेरा ढंग लग गया है, मैं इस शहर में रहूँगा, जैसा मैं चाहता था वैसा मुझे मिल गया है, जय गोपाल जी की ! मैं जाता हूँ !" ऐसा कह कर व्यापारियों के साथ चला गया।

बाद वहां के रहने वालों में से एक बोला "तुम दोनों भी जो रोजगार करना चाहो, तो कर सक्ते हो !" प्रथम क्षत्रिय बोला "नहीं ! यह मेरा काम नहीं है ! मैं राजपूत हूँ ! मैं अपने सामर्थ्य से विजय कर के ऐश्वर्य प्राप्त करूगा ! मैं धन्धे की झंझट में नहीं पड़ता ! रुपये से रुपया कमाना, इसमें सामर्थ्य ही क्या है ? न मैं इस शहर में रहूँगा और

नधन्धा ही करूंगा !" तब दूसरे क्षत्रिय की तरफ देख कर पुलिस का अधिपति बोला "आप क्या चाहते हो ?" दूसरा क्षत्रिय बोला "मैं क्षत्रिय हूँ ! धंधा करना मेरा काम नहीं ! मैं राज दरबार में सरदार, सेनापति आदि काम करना चाहता हूँ क्यों कि यह भी एक प्रकार का रक्षण का कार्य है !" प्रथम क्षत्रिय बोला "वाह ! तू इतना परिश्रम करके, शूरवीरता दिखलाने और ऐश्वर्य प्राप्त करने को मेरे साथ आया था, थोड़े से मैं संतोष क्यों करता है ?" दूसरा क्षत्रिय बोला "मैं इतने ही में संतुष्ट हूँ ! यह भी क्षत्रिय का ही धर्म है ! किसी से मार पीट करेंगे, किसी से लड़ेंगे, क्या खबर हम जीतें या सामने वाला ? लड़ते २ मर गये तो सब चाहना मिट्टी में मिल जायगी ! तू ही अपने सामर्थ्य की परीक्षा कर ! (पुलिस के अधिपति से) आप मुझे किसी योग्य कार्य में लगा दीजिये ! (अपने साथी से) भाई ! अब मैं जाता हूँ, मुजरो !" यह कह कर दूसरा क्षत्रिय पुलिस वाले के साथ मुख्य सूबा के पास पहुंचा और सेनापति बनगया, प्रथम क्षत्रिय ने वहां के लोगों से यह सुना कि यहां से थोड़ी दूर पर अमृतपुर है, जो कोई परदेशी वहां जाता है और विजय करता है, वह महान ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ।

दूसरे दिन क्षत्रिय प्रातःकाल उठ कर वहां से चल दिया । थोड़ा चला होगा, एक विलक्षण पुरुष से उसकी भेट हुई । वह मनुष्य दीखता हुआ भी मनुष्य नहीं था ! उसने क्षत्रिय से कहा "तुम कहां जाना चाहते हो ?" क्षत्रिय ने कहा "मैं अमृतपुर जाना चाहता हूँ !" उसने कहा "अमृतपुर जाकर क्या करोगे ? तुम

अकेले वहां नहीं जा सक्ते ! तुम को युद्ध करके विजय प्राप्त करनी होगी ! तभी तुम वहां जाने पाओगे !" क्षत्रिय बोला "मैं इसी कारण वहां जाना चाहता हूँ, मैं जो कुछ प्राप्त करूंगा अपने सामर्थ्य से करूंगा ! और लौटूँगा भी नहीं !" अमानव पुरुष बोला "वाह ! भाई ! जब तुम में इतनी हिम्मत है तो मेरा भी धर्म है कि मैं तुम्हारे साथ २ जाकर तुम को वहां पहुंचा दूं !" दोनों साथ साथ चले । एक भारी नदी आई, नदी में अथाह जल था वहां कोई नाव नहीं थी ! तैर कर ही जाना पड़ता था ! दोनों नदी में कूद पड़े ! नदी में कूदते ही क्षत्रिय का शरीर दिव्य हो गया और इतना हलका हो गया कि जल पर पृथिवी के समान चलने लगा ! दोनों चल कर पार पहुँचे । वहां एक सुन्दर रथ खड़ा देखा ! दोनों रथ में बैठकर अमृतपुर में पहुंचे । दरवाजे पर पहुंचते ही वहां के द्वारपालों से क्षत्रिय का युद्ध हुआ ! द्वारपालों को परास्त करके क्षत्रिय शहर में पहुंचा ! वहां के रहने वाले एक सी आयु और वस्त्र वाले तथा समान थे । क्षत्रिय वहां जाकर और महाराज पद को प्राप्त होकर सुखी हुआ । इस प्रकार यद्यपि पांचों मित्र एक साथ घर से निकले थे तो भी अपनी २ योग्यता के अनुसार फल को प्राप्त हुये ।

जब मनुष्य को विशेष प्राप्ति की इच्छा होती है और अपनी वर्तमान स्थिति में असंतोष होता है तब वह विशेष प्रवृत्ति में लगता है । असंतोष एक प्रकार का नहीं है, सामान्य, विशेष और तिरस्कार रूप तीन प्रकार का है । असंतोष और अपने सामर्थ्य

के अनुसार मनुष्य प्रयत्न में लगता है। पांचों मित्रों को अपनी वर्तमान स्थिति में असंतोष था। पांचों अपनी विशेष उन्नति चाहते थे इस लिये प्रयत्न में लगे। इस प्रकार प्रयत्न में लगने को पुरुषार्थ अथवा परलोक के निमित्त का शुभ कर्म कहते हैं। तीनों ने जगत् रूप ग्राम को तुच्छ समझकर छोड़ दिया। ग्राम की इच्छा के त्याग रूप नदी से पांचों आगे गये, रूप नगर में पहुंचे। रूप नगर स्वर्ग है, प्रयत्न से वे स्वर्ग में पहुंचे। स्वर्ग प्राप्ति के लिये जो यत्न था वह साकार उपासना रूप है। शूद्र की इतनी ही इच्छा थी, उसने इतना ही कार्य किया और अपनी इच्छा के अनुसार फल पाया। दूसरे वैश्य का भाव सगुण उपासना का था परन्तु स्वर्ग के ऐश्वर्य से मोह को प्राप्त होने से, सगुण ब्रह्म का भाव होते हुये भी वह आगे जाने न पाया, स्वर्ग में ही रुक गया। दो क्षत्रिय और एक वैश्य स्वर्ग से आगे चले। बीच में जो नदी आई, वह स्वर्ग की कामना का त्याग रूपी थी। उस नदी के पार करने के बाद सुवर्णपुर आया। सुवर्णपुर ब्रह्मलोक रूप था। वहां वैश्य की अपनी इच्छानुकूल प्राप्त होने से रुक गया यानी वह ब्रह्म लोक की इच्छा से आया था इस लिये इच्छा पूर्ण होने से वहां ही रुक गया। दूसरे क्षत्रिय की इच्छा परम पद प्राप्त करने की थी यानी वह निर्गुण ब्रह्म के उपासक के समान था, परंतु सगुण उपासना के फल रूप ऐश्वर्य से पूर्ण ब्रह्मलोक को देख कर वहां ही रह गया, आगे न गया। प्रथम क्षत्रिय वहां से भी आगे चला। बीच में दिव्य अमानव पुरुष से उस का जो मेल हुआ, वह ज्ञान है। ज्ञान द्वारा मूलाज्ञान रूप नदी को पार करके अमृतपुर के द्वार

पर पहुंचा। सूक्ष्म संस्काराभास रूप वहां के द्वारपालों को जीत कर यानी निर्बीज हो कर परम पद को प्राप्त हुआ।

साकार की उपासना करने वाले को, उसकी इच्छा और ज्ञान के अनुसार स्वर्ग लोक में फल की प्राप्ति होती है। सगुण ब्रह्म की उपासना यदि यथार्थता से न हो अथवा स्वर्ग की कामना बीच में आड़ रूप हो जाय तो दूसरे वैश्य के समान उपासक सगुण ब्रह्म को प्राप्त न हो कर स्वर्ग में ही रह जाता है। प्रथम वैश्य ने सगुण उपासना की थी, उसके अनुसार वह सगुण ब्रह्म को प्राप्त हुआ। दूसरे क्षत्रिय ने निर्गुण उपासना की थी। परंतु सगुण ब्रह्म के ऐश्वर्य में लोलुप होने से निर्गुण उपासना से ज्ञान द्वारा परम-पद की प्राप्ति के बदले सगुण ब्रह्म की ही प्राप्ति हुई। प्रथम क्षत्रिय ने आरंभ से ही निर्गुण ब्रह्म की उपासना इच्छा की, स्वर्ग सुख—अथवा ब्रह्म लोक के ऐश्वर में मोहित न हुआ और अन्त में ज्ञान द्वारा परमपद को ही प्राप्त हुआ।

परब्रह्म में क्या है ? वहां किस प्रकार का आनन्द है ? इसके बारे में बहुत से प्रश्न किया करते हैं। अज्ञानियों को इसका उत्तर क्या दिया जाय ? इतना ही कहा जा सक्ता है कि परब्रह्म सब ऐश्वर्य और आनन्द का भंडार है ! सर्व से श्रेष्ट है ! इसके सिवाय परब्रह्म के बारे में विशेष कुछ लिख नहीं सक्ते। लिख कर समझाया चाहें तो कोई समझ नहीं सक्ता। अनुभव की बात अनुभव सिवाय अनुमान का विषय नहीं है। जब सामान्य अनुभव की बात भी समझाने से यथार्थ समझ में नहीं आती, तब इस अंतिम

स्थिति को, जिसने अनुभव नहीं किया है, कैसे समझ सके ? जैसे वंध्या स्त्री को प्रसूति-बालक के पैदा होने के समय का दुःख समझाने से यथार्थ मालूम नहीं हो सक्ता इसी प्रकार परब्रह्म स्वरूप का अनुभव परब्रह्म ही को हो सक्ता है।

ज्ञानी किसी भी देव लोकादि के उपभोग स्थान को प्राप्त हुवे विना ही स्वरूप से परम ज्योति को प्राप्त हो कर स्वस्वरूप से आविर्भाव को प्राप्त होता है, मोक्ष काल में ज्ञानी किसी आगंतुक विशेष रूप को प्राप्त नहीं होता। स्वस्वरूप में जाग्रतादि अवस्थाओं से विलक्षण स्थिति है। जाग्रतावस्था में जीव जाग्रत् देह के अंधपने आदि धर्म वाला होता है, स्वप्न में किसी से हत हुआ हो ऐसा होता है; अथवा पुत्रादि के नाश से रुदन करने वाले के समान होता है, और सुषुप्ति में विशेषता के अज्ञान से नाश हुआ हो ऐसा होता है परन्तु मोक्ष में सब दुःखों से रहित, ज्ञान स्वरूप और पूर्णानन्द में टिका हुआ होता है। मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुआ सब प्रकार के बंधनों से मुक्त ही है। 'मोक्ष का फल' ऐसा कहना भी बंध की निवृत्ति मात्र से ही है। ऊपर जो ज्योति कहा है, वह आत्मा को ही कहा है, उस को भौतिक ज्योति न समझना। परब्रह्म अभेद रूप होने से मुक्त पुरुष परमात्मा से अभेद होकर ही टिकता है। मुक्ति के स्वरूप को निरूपण करने वाले श्रुति वाक्य नदी और समुद्र आदि दृष्टांतों से अभेद को ही दिखलाते हैं।

निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति स्वरूप है और सगुण ब्रह्म की प्राप्ति रूप ब्रह्म लोक में जो मुक्तता है, उस में ईश्वर के साथ

समानता होने से मुक्त में ईश्वर धर्म का आविर्भाव होता है। वहां ऐश्वर्यता का चैतन्य से अविरोध होने से निर्गुण और सगुण दोनों संभवित हैं। पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों सत्तायें क्रम से सत्य और अध्यस्त होने से इनके धर्मों का परस्पर विरोध नहीं है। जो ईश्वर के धर्म हैं, उनसे ही मुक्त चिदात्मा में अन्य जीवों करके व्यवहार किया जाता है; इसलिये मुक्त में भी, व्यवहार पक्ष में, ईश्वर के धर्मों का संभव है। मुक्त संकल्प मात्र से पितृ आदिक स्थानों को प्राप्त होता है।

सगुण ब्रह्मवेत्ता पुरुष के संकल्प की प्राकृत पुरुष के संकल्प से विलक्षणता है। मुक्त पुरुष को तो संकल्प के बल से ही प्रयोजन पर्यन्त भोग साधनों की स्थिरता हो सक्ती है, इसलिये विद्वान् अन्य अधिपति रहित स्वतंत्र गति वाला हो कर सब लोकों में विचरता है। ईश्वर के धर्म उसमें होने से उसके संकल्प का भंग नहीं होता। जब विद्वान् शरीरपने का संकल्प करता है, तब शरीर वाला होता है और जब अशरीरपने का संकल्प करता है, तब अशरीरी होता है। सत्य संकल्प और संकल्प की विचित्रता से ऐसा होता है। ऐसे ही उसके शरीर के अभाव में उसको मोक्ष में भी भोग का संभव होने से विद्वान् को भोग के अभाव का प्रसंग नहीं है। जैसे स्वप्नावस्था में जब शरीर और इन्द्रियों का अभाव होता है, तब शरीर, इन्द्रियां और विषय अविद्यमान् होने पर भी मन से ही प्रतीति मात्र सूक्ष्म भोग को जीव भोगता है, ऐसे ही मोक्ष अवस्था में भी मन से सूक्ष्म भोगों को विद्वान् भोगता है। विद्वान् को शरीर के अभाव में भोग भोगने का अप्रसंग नहीं है। शरीर आदि

के अस्तित्व में जैसे जाग्रत् जीव विद्यमान् भोगों को भोगता है, वैसे ही मोक्ष अवस्था में अनंत भोग होता है। जैसे एक दीपक अपनी कार्य शक्ति के योग से–अनेक बत्तियों के योग से अनेक दीपकों के भाव को प्राप्त होता है, वैसे ही विद्वान् भी विद्या और योग के बल से अनेक शरीर सम्बन्ध को प्राप्त हो कर एक ही समय सब में भोगों को भोग सक्ता है। अनेक शरीर प्रवेश आदि ऐश्वर्य मुक्त पुरुष में है; क्योंकि कारण शरीर और कैवल्य दोनों में से एक की अपेक्षा से विशेष ज्ञान का अभाव कहा है, इससे सगुण उपासक को सगुण विद्या के बल से ब्रह्म लोक में एश्वर्य की प्राप्ति होती है।

जगत् की उत्पत्ति आदि कार्य शुद्ध ईश्वर का होने से और, ईश्वर के ज्ञान पूर्वक मुक्त पुरुषों को अणिमा आदि ऐश्वर्य होने के श्रवण से और जगत् की उत्पत्ति आदि व्यापार में असीमपने से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय को छोड़ कर अन्य सब अणिमा आदि ऐश्वर्य मुक्त पुरुषों के स्वाधीन है। जगत् की उत्पत्ति आदि कार्य मुक्तों का नहीं है। मुक्त विद्वान् की भोग में स्वाराज्य स्वतंत्रता है, जगत् की उत्पत्ति आदि में नहीं है।

परमात्मा की स्थिति को श्रुति दो प्रकार से कहती है; सविकार और निर्विकार। निर्गुण उपासक अभेद रूप से निर्गुण रूप को प्राप्त होता है और सगुण उपासक सगुण रूप को प्राप्त होता है। उनमें से सगुण उपासक को निरंकुश ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं है किन्तु सांकुश ऐश्वर्य ही प्राप्त है। श्रुति स्मृति परमात्मा को निग-

एता से ही दिखलाती है। जो परम ज्योति रूप है, नाड़ी और रश्मि के सम्बन्ध से जो देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्म लोक को जाते हैं, वे स्वर्ग में गये हुये के समान पुण्य भोग कर फिर जगत् में जन्म धारण नहीं करते। 'ब्रह्म लोक में अर और एय इन नामों के दो समुद्र के समान दो अमृत के ह्रद हैं, अन्न का विकार रूप हर्ष का उत्पन्न करने वाला सरोवर है, अमृत की वृष्टि करने वाला अश्वत्थ है, अपराजितापुरी और हिरण्यमय गृह है' ऐसा शास्त्र में कहा है। ब्रह्म लोक का ऐश्वर्य नाशवंत है परन्तु पुनरागमन वाला नहीं है, इस लिये ब्रह्मा के साथ विदेह कैवल्य को प्राप्त होते हैं। पंचाग्नि विद्या से, अश्वमेध यज्ञ से और सुदृढ ब्रह्मचर्य से जो ब्रह्म लोक में जाता है, वह दूसरे कल्प में पुनः आवृत्ति को प्राप्त होता है। जो अभेद उपासना और तत्व ज्ञान सहित ब्रह्म लोक में जाता है, उसका अपूर्ण रहा हुआ तत्व ज्ञान पूर्ण होकर वह ब्रह्मा के साथ विदेह कैवल्य को प्राप्त होता है। अपूर्ण ज्ञान को पूर्ण करने के लिये वहां गुरु शास्त्र की अपेक्षा नहीं है, वहां के शुद्ध वायु से ही स्वतः पूर्ण होता है। और जो नित्य सिद्ध ब्रह्म स्वरूप हुआ है, जिसने इस लोक और परलोक के भोगों को अनर्थ का समुदाय समझ कर दृढ़ता से त्याग किया है, जो ब्रह्मानन्द में स्थिति कर के टिका हुआ है, वह निस्संशय परब्रह्म को ही प्राप्त होता है। उसका आना जाना और मोक्ष का मार्ग तक भी नहीं है, उसका प्राण जहां का तहां व्यापकता में लय होजाता है। यथार्थ निर्गुण उपासक को ज्ञान द्वारा इसी फल की प्राप्ति होती है।

श्री कृष्ण महाभारत के युद्ध के प्रसंग में पांडव और कौरव दोनों पक्ष से सम्बन्ध रखने वाले थे। दोनों ही पक्ष चाहते थे कि हमको श्री कृष्ण की मदद मिले। पांडव पक्ष का अर्जुन दैवी संपत्ति वाला, श्रीकृष्ण का सखा था और श्रीकृष्ण को अपना हितेच्छु और श्रेष्ठ समझता था। उसका पक्का निश्चय था कि श्रीकृष्ण जो करेंगे मेरे हित का ही करेंगे। इसके विरुद्ध दुर्योधन जो कौरव पक्ष का था, उसका हाल दूसरी प्रकार का था। वह श्रीकृष्ण की मदद चाहता था परन्तु श्रीकृष्ण को श्रेष्ठ नहीं समझता था किंतु अपने को श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ मानता था वह अभिमान की स्वयं मूर्ति था, देखता हुआ भी राज्य मद से अन्धा था। राजसु यज्ञ में जो उसकी हँसी हुई थी, उसमें श्रीकृष्ण को भी शामिल समझ कर भीतर से उनसे जलता था। अपने लोभ में नीति को छोड़ देता था, किसी को भी नमन नहीं करता था और ऐसा समझता था कि श्रीकृष्ण एक ग्वाले का लड़का है। तो भी युद्ध में उसकी मदद लेना चाहता था।

अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही श्रीकृष्ण से मदद मांगने को उपस्थित थे। श्रीकृष्ण ने चतुराई से काम लिया। श्रीकृष्णजी बोले "तुम दोनों ही मेरी मदद चाहते हो, परंतु मैं एक हूं, तुम दो हो। दोनों ही परिचित और सम्बन्धी हो। मैं दोनों को किस प्रकार मदद दे सकता हूं? मैं तुम दोनों को एक बात बताता हूं, तुम दोनों कल आकर मुझ से मदद की याचना करना। जो प्रथम मेरे पास आ पहुंचेगा, मैं उसकी मदद करूंगा!" दुर्योधन बोला "नहीं! ऐसा नहीं हो सकता, तुमको हमारी ही

मदद करनी होगी ! मैं तुमको छोड़ने वाला नहीं हूं ! क्या तुमने मुझे इतना मूर्ख समझा है कि मैं तुमको छोड़ दूं और अपने कार्य में तुम्हारी मदद न लूँ ? क्या तुम्हारे साथ सम्बन्ध होने का यही फल है ? मैं तुमसे जबरदस्ती मदद लूँगा ! " श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुये बोले " दुर्योधन ! इसमें कुछ सन्देह नहीं कि तेरा मुझ पर अधिकार है; परन्तु विचार, जैसा तेरा अधिकार है वैसा ही अर्जुन का भी अधिकार है । तुम दोनों से मेरा सम्बन्ध है, दोनों ही मेरे लिये समान हो । मैं तुम दोनों में से किसी को भी अप्रसन्न करना नहीं चाहता, इसलिये ही मैंने निश्चय किया है कि तुम दोनों में से जो मेरे पास प्रथम पहुंचेगा, मैं उसके साथ रहूँगा ! " दुर्योधन बोला " ऐसा क्यों ? राज्यहीन, श्रीहीन, और थोड़े से सैन्य वाले पांडवों के साथ रहने से तुम्हारी कौनसी कीर्ति होगी ? वे लोग हमको जीतलें, ऐसा तो बन नहीं सक्ता ! फिर ऐसों की मदद करके तुम अपनी अपकीर्ति करना क्यों चाहते हो ? मुझे वचन दे दो कि तुम मेरी ही मदद करोगे ! तुम्हारी मदद न होगी तो भी हम अवश्य जीतेंगे ! मैं जो तुम से मदद मांगता हूं, अपना कर्तव्य समझ कर मांगता हूं !" श्रीकृष्ण ने कहा "अर्जुन को भी कुछ कहने दो (अर्जुन से) अर्जुन ! बोल क्या कहता है ?" अर्जुन बोला "प्रभो ! मैं क्या कहूं ? मेरा तो इतना ही कहना है कि आप को जो अच्छा लगे, वही कीजिये ! मैं दुर्योधन के समान जवरदस्ती से ले चलने का दावा नहीं करता । मैं आप को चाहता हूं, मैं आपके बिना अकेला युद्ध कैसे करूंगा ? आप ही विचारिये ! आप प्रत्येक की मदद करने को समर्थ हो ! चाहो

जिसकी मदद करने में स्वतंत्र हो !" दुर्योधन बोला "सुनिये ! मेरे समान इसका आग्रह नहीं है, तब मेरी मदद करने में तुमको बाधा ही क्या है ? मैं बलिष्ट हूं तुमको खें ूंगा, तुम्हारी इच्छा विना तुमको खेंचने की अर्जुन में सामर्थ्य कहां है ?" श्रीकृष्ण दुर्योधन के अभिमान युक्त वचन सुन कर जी में हंसते हुये बोले "सुन ! जो मैंने निश्चय किया है, उसको मैं बदल नहीं सक्ता। यदि तुझे मुझे ले चलने की इच्छा हो तो कल बुलाने को आइयो, मैं कहता हूं कि जो प्रथम बुलाने आवेगा उसी की तरफ मैं रहूंगा !" दुर्योधन विचारने लगा "श्रीकृष्ण अपने निश्चय को बदलने वाले नहीं हैं; कल मैं बहुत जल्दी से उनको बुलाने आऊ ंगा, वे मेरी ही मदद करेंगे ! " ऐसा विचारता हुआ दुर्योधन चला गया और अर्जुन भी चल दिया।

श्री कृष्ण सम भाव वाले होने से जैसा जिसका प्रेम हो उसकी तरफ वैसा ही प्रेम श्रीकृष्ण का होता था। दूसरे दिन श्रीकृष्ण सो रहे थे, उसी समय अर्जुन से प्रथम दुर्योधन उनको बुलाने को पहुंच गया और श्रीकृष्ण को सोता हुआ देखकर उनके सिरहाने की तरफ रक्खी हुई चौकी पर बैठ गया। श्रीकृष्ण जान गये कि दुर्योधन आ गया है, अभी अर्जुन आने नहीं पाया है। दुर्योधन के साथ उनको रहने की इच्छा न थी इसलिये अर्जुन की राह देखते हुये चुप पड़े रहे। थोड़ी देर में अर्जुन आया और दुर्योधन को बैठा हुआ देख कर खिन्न हुआ, प्रणाम करके श्रीकृष्ण के पैरों की तरफ खड़ा होगया।

श्रीकृष्ण ने आंख खोली और अर्जुन को सामने खड़ा देखकर कहा 'अर्जुन! तू कब आया?" अर्जुन के उत्तर देने से प्रथम ही दुर्योधन बोल उठा "प्रथम तो मैं आया हूँ" श्रीकृष्ण ने कहा "ठीक है, परन्तु मैंने प्रथम अर्जुन को देखा है, मैं अर्जुन के साथ ही रहूँगा!" दुर्योधन क्रोधित होता हुआ बोला "वाह! छल विद्या जाती ही नहीं है! वचन की लगाम ही हाथ में नहीं है!" श्रीकृष्ण ने कहा "जैसा तू है ऐसा ही तू मुझे जानता है! अच्छा! मैं भी अपने दो भाग करता हूँ, एक तरफ मेरा सैन्य और दूसरी तरफ मैं अकेला! बोल! मेरा सैन्य लेना चाहता है या मुझको?"

दुर्योधन सोच में पड़ गया और विचारने लगा—एक को लेकर क्या होगा? जब सब सैन्य मेरी तरफ आ जायगा और एक मनुष्य पांडवों की तरफ रहेगा तो मेरा क्या कर सकेंगे? किंतु थोड़ी रोक और लगानी चाहिये!—ऐसा विचार कर बोला "तुम भी युद्ध करने में बलिष्ठ हो, तुम्हारा सैन्य तो मेरा है ही, तुमको भी लूंगा!" श्रीकृष्ण ने सोचा "यह जिद्दी है, मानने वाला नहीं है, मुझे अर्जुन के साथ अवश्य रहना है!" ऐसा विचार कर कहा "यदि इस बात से घबराता हो कि मैं तेरे विरुद्ध लड़ूँगा तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं युद्ध में लड़ूंगा नहीं! शस्त्र भी धारण नहीं करूंगा!" दुर्योधन बोला "तब तुम क्या करोगे?" श्री कृष्ण बोले "मैं अर्जुन का सारथीपना ही करूंगा!" दुर्योधन मन में प्रसन्न होता हुआ बोला "अच्छा! तब सैन्य मेरा और न लड़ने की प्रतिज्ञा सहित तुम पांडवों के!"

ऐसा कह कर दुर्योधन चला गया ! श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने, इसीसे कौरवों का नाश हुआ। अर्जुन को ज्ञान का उपदेश मिला और राज्य भी प्राप्त हुआ।

ऊपर के दृष्टांत से सगुण और निर्गुण उपासना का फल इस प्रकार समझना चाहियेः—अर्जुन अभिमान रहित श्रीकृष्ण का भक्त था। उसके वाक्य में निर्मलता और अभिमान रहितपना था और दुर्योधन के वाक्य में अभिमान था, वह लोभवश होकर अभिमान सहित श्रीकृष्ण को चाहता था। इसलिये उसकी अभिमान युक्त उपासना से अभेद में भी भेद रखने के कारण ऐश्वर्य अर्थात् सैन्य की प्राप्ति हुई, जो ब्रह्मलोक के समान है और अर्जुन को निर्गुण उपासक के समान ज्ञान प्राप्त हुआ। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में जब अहंकार निर्मल होता है तब यथार्थ फल होता है। सगुण उपासना में कुछ अहंकार रहता है इसलिये सगुण उपासक के व्यक्तित्व का संपूर्ण नाश नहीं होता। ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त होने से व्यक्तित्व का नाश नहीं होता, यदि ऐसा हो तो ऐश्वर्य की प्राप्ति किस प्रकार हो ? इतना ही सगुण और निर्गुण उपासना में भेद है। निर्गुण उपासना कहने मात्र की उपासना है। निर्गुण उपासक पाटवी कुंवर के समान है, ज्ञान के बाद वह अखंडित साम्राज्य को ही प्राप्त होता है।
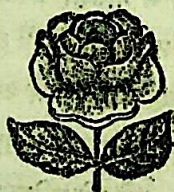
गायत्री ।

जगत् में अनेक मजहब प्रवर्तीत हो रहे हैं परन्तु धर्म रहस्य जितना आर्य शास्त्र में गुप्त या प्रकट भाव से है उतना अन्य प्रजाओं के धर्म ग्रन्थों में या मजहबों में नहीं है। यहां व्यवहार के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्यों में भी आत्मोन्नति-श्रेय के निमित्त कुछ न कुछ अंश रक्खा ही गया है। यद्यपि लोग उस रहस्य को नहीं समझते तो भी लोकाचार में उस का वर्ताव किया ही जाता है और न समझा हुआ वर्ताव भी कुछ फल देता ही है। अन्य देश वासी मजहब वाले उस वर्ताव को वहम आदिक कह कर निन्दा करते हैं तो भी सच्चा आर्य अपने रहस्य से भरे हुये रिवाज को नहीं छोड़ता; किंतु ऐसा समझता है कि यद्यपि अपनी बुद्धि उस रहस्य को नहीं समझ सक्ती तो भी ऋषियों ने शुद्ध बुद्धि से जो निर्णय किया है वह कभी भी निष्फल न होगा। यदि उन शुद्धात्माओं की बुद्धि अनुसार हम भी शुद्धता को प्राप्त हो जांय तो हमारे लिये भी उन का रहस्य समझना कठिन नहीं है। सच्चे आर्य अपनी बुद्धि की अपेक्षा ऋषियों की बुद्धि पर अचल निश्चय वाले होते हैं। आर्य प्रजा को व्यवहार में व्यवहारिक उन्नति को सुख स्वरूप समझना या अन्तिम फल समझना, यह भाव नहीं होता। सच्चे आर्य में रहे हुये सनातन अंश का यह प्रभाव है। अर्वाचीन समय में अन्यदेशवासियों के संसर्ग से आर्यभाव में शिथिलता आती हुई मालूम होती है, तो भी सच्चा संस्कारी आर्य तो संसारी व्यवहार को घर, देश, निवास के समान काम चलाऊ समझता है और अपने आद्य स्वरूप की तरफ जाने के भाव को

मुख्य समझता है। खाना, पीना, पहिनना, धन्धे, गृहकार्य, तथा बुहारीका रखना, चूल्हे के मुख का रखना, सोते समय शिर पैर कौन दिशा में रखना इत्यादि तुच्छ २ कार्यों में भी जो विधि है वह आत्मिक भाव की तरफ ले जाने वाली और शुद्धि करने का हेतु है। जो उस रहस्य युक्त प्रवृत्ति को भ्रम कहने लगे हैं वे अवश्य दूसरों के संग से दूषित हुये हैं और जो बाहर की प्रलोभन वाली नाशवंत उन्नति को ही मात्र उन्नति समझ कर प्रयत्न कर रहे हैं, जो शास्त्राज्ञा और शास्त्र रहस्य से रहित हैं, उनको सच्चा आर्य नहीं कह सक्ते। आत्मिक रहस्य के अंश रहित भौतिक उन्नति को ग्रहण करना तेल को छोड़ कर खल को ग्रहण करने के समान है। ऐसों को अनार्य कहने में कोई दोषापत्ति नहीं है। तीन वर्ण को नित्य प्रति संध्या करने की शास्त्र ने जो आज्ञा दी है, वह रहस्य से भरी हुई हैं। दो समयों के एक स्थान पर मेल होने को संधि कहते हैं या दो के विग्रह की निवृत्ति को संधि कहते हैं। मुख्य संधि सूर्योदय और सूर्यास्त की है। रात्रि का व्यतीत होना और सूर्य के उदय होने की तैयारी संधि है, इस संधि की संध्या को प्रातः संध्या कहते हैं। इसी प्रकार सूर्य के अस्त होने और रात्रि के आगमन के समय में जो संध्या की जाती है, उसे सायं संध्या कहते हैं। संध्या करना एक धार्मिक क्रिया है। प्राप्त संधि समय को न जाने देना यह संध्या का भाव है। संधि अन्धेरे और उजाले के अन्वय वाली और उनके भिन्न भाव से रहित होती है। संधि में समानता होती है। अन्धेरा अज्ञान और उजाला ज्ञान है। उन दोनों की सम अवस्था संधि है। जिससे ज्ञान और अज्ञान की स्थिति है,

जो ज्ञान, अज्ञान दोना स्वरूप है, जो सम है, ऐसे आत्म तत्त्व का बोध संधि में होता हैं। जिस अधिष्ठान में राग द्वेष अध्यस्त समान होकर अनिर्वचनीयता से प्रतीत हों, उस अधिष्ठान रूप परब्रह्म की तरफ ले जाने वाली संध्या है। जो एक दूसरे को जोड़े या मिलावें उसे संधि कहते हैं। जिस प्रकार टूटे हुये धागे का जुड़ना सन्धि है इसी प्रकार टूटे हुये आत्मभाव का जुड़ना-भान होना सन्धि है यानी स्वरूप के अज्ञान से स्वरूप के विग्रह की जो प्रतीति हो रही है, उस स्वरूप के अज्ञान रूप विग्रह की निवृत्ति और स्वस्वरूप की प्राप्ति रूप संधि को संध्या कहते हैं। व्यवहारिक मनुष्यों का यानी तीनों वर्ण वालों और तीनों आश्रम वालों का कर्तव्य रूप संध्या है। संध्या में मुख्य क्रिया दो प्रकार की होती है, स्थूल और सूक्ष्म। प्राणायाम आदिक क्रिया स्थूल है और मन्त्र में मुख्य स्वरूप गायत्री का मनन रूप सूक्ष्म है। संध्या में प्राणायाम आदिक स्थूल क्रिया संध्या का स्थूल शरीर है और मंत्र सूक्ष्म शरीर है। स्थान, काल और वस्तु मिला कर संध्या त्रिस्वरूपिणी है। रेचक, पूरक और कुंभक भेद से प्राणायाम त्रिपाद है और गायत्री भी त्रिपाद है यानी संध्या का मंतव्य तीन प्रकार-तीन पाद का है और सबका अधिष्ठान परब्रह्म चतुर्थ पाद अमात्र स्वरूप है। त्रिपाद व्यवहारिक लोगों के समझने के हैं। चतुर्थ ज्ञानियों का साक्षी स्वरूप है। त्रिपाद कर्म उपासना और ज्ञान है। गायत्री भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार के भाव युक्त है। गायत्री के वर्ण स्वरूप तीनों पाद स्थूल हैं, भूः भुवः स्वः सूक्ष्म हैं और ॐकार कारण रूप है। अकार, उकार, मकार और चतुर्थ अमात्र सहित

ॐकार कारण है, भूः भुवः स्वः ॐकार सहित सूक्ष्म है और गायत्री के तीनों पाद ॐकार और भूः भुवः स्वः सहित स्थूल हैं। गायत्री में ॐ, भूः भुवः स्वः चतुर्थ है, व्याहृतियों में ॐ चतुर्थ है और ॐकार में अमात्र चतुर्थ है। ॐ परब्रह्म है, भूः भुवः स्वः ऋग् यजु और साम वेद हैं और गायत्री वेदों का विस्तार रूप ब्रह्मांड है। ॐ सहित तीनों वेदों से दुहकर निकाला हुआ सार गायत्री है। तीनों वेदों की ऋचाओं में गायत्री का एक २ पाद रहा हुआ है। तीनों वेदों के बीज रूप भूः भुवः और स्वः हैं, ॐकार, तीनों व्याहृतियां और गायत्री के तीनों पादों को मिला कर गायत्री को वेद का मुख जानना चाहिये। चारों मात्रा सहित ॐकार कारण रूप से ब्रह्म का वाचक है और ब्रह्म वाच्य है। ॐ भूः भुवः स्वः सूक्ष्म रूप से ब्रह्म के वाचक हैं और ब्रह्म वाच्य है। ॐ, तीनों व्याहृतियां और गायत्री के तीन पाद स्थूल रूप से ब्रह्म के वाचक हैं और ब्रह्म वाच्य है इसलिये गायत्री से बढ़ कर और कोई मन्त्र नहीं है। अनादि काल से ऋषि, मुनि गायत्री का जप—मनन करते आये हैं इससे भी गायत्री का प्रभाव विशेष है। ब्रह्मांड सहित ब्रह्म को जानने का गायत्री सूक्ष्म चित्र है। जिन २ ऋषि मुनियों ने गायत्री का जाप-मनन किया है, वे अपने प्रभाव को भी मंत्रोच्चारण में छोड़ते गये हैं इसलिये गायत्री अनन्त प्रभाव वाली है। इसी कारण विना समझे भी श्रद्धा से किया हुआ गायत्री का उच्चार भाव के अनुसार फल दाता होता है। वह ही गायत्री विचार सहित स्वर्ग प्राप्ति अथवा अन्तःकरण की शुद्धि रूप विशेष फल देने वाली होती है और मनन पूर्वक किया हुआ जाप परम पद को प्राप्त कराता है।

ॐतत्सवितुर्वरेण्यं गायत्री का प्रथम पाद, भर्गोदेवस्यधीमाहि दूसरा पाद और धियो यो नः प्रचोदयात् तीसरा पाद है।

अर्थः—जो ब्रह्म है, सर्वाधार है, दुःखों की निवृत्ति करने वाला है, व्यापक है, सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला है और ऐश्वर्य दाता है, ऐसे स्वीकार करने योग्य-अतिश्रेष्ठ सुख देने वाले को हम धारण करते हैं, जो ब्रह्म चैतन्य-परम तेज अन्तर्यामी रूप से; वह हमारी बुद्धि वृतियों शुद्ध होने की प्रेरणा करे।

गायत्री मंत्र का संध्या सिवाय अनुष्ठान, जाप, मंत्र, तंत्रादिक में भी उपयोग होता है और चित्त की एकाग्रता और भाव के अनुसार फल होता है। ज्ञानियों की स्थिति गायत्री के तत्त्व के ऊपर होती है, उपासकों को उसका रहस्य उपास्य है और कर्मियों को कर्म फल दाता देव गायत्री हैं। गायत्री से पृथक् कोई भी नहीं रह सकता क्योंकि जो कुछ जगत् का पसारा है वह तीनमय है और गायत्री का रहस्य–तत्त्व सबका अन्तिम है। जानकर, अनजानपने से, जप से, भजन से, ध्यान से आस्तिकभाव से या नास्तिक भाव से सब गायत्री का ही अनुकरण करते हैं, उसमें ही सबका निर्वाह है तो भी उसका जितना ज्ञान होता है, जितनी श्रद्धा होती है उसी के अनुसार वह फल अथवा परम पद की देने वाली होती है। जिसका जैसा कर्म और ज्ञान होता है उसी के अनुसार उसे फल की प्राप्ति और स्थिति होती है। जो तीनमय है उसको एक ही करके समझना गायत्री का लक्ष है। उत्पत्ति, स्थिति और लय होते हुये भी एक में होने से एक ही स्वरूप है, यह गायत्री का लक्ष है

अद्वैत परब्रह्म ही गायत्री का लक्ष है। सब जगत् की भिन्नता को तीन में बांटकर तीन स्वरूप बताये गये हैं; उन तीनों को एक किया हुआ जो हमेशा अविकारी स्वरूप है वह गायत्री का लक्ष है। जो तत्त्व रूप से गायत्री को जानता है, मानता है, समझता है, निश्चय करता है, वह परम पद को प्राप्त होता है। अनेकता का मिलान एक में करने की युक्ति स्वरूप गायत्री है इसीलिये उसको वेदमाता भी कहते हैं। जिससे वेद का विस्तार हुआ है वह गायत्री है। जो गायत्री मंत्र को पढ़ता समझता है परन्तु एकता नहीं करता वह गायत्री के तत्त्व को नहीं जानता और उसका संपूर्ण फल जो स्वसाम्राज्य है उससे वंचित रहता है इसलिये गायत्री के तत्त्व को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिये। गायत्री को इस प्रकार समझ सकते हैं:—

एक सुन्दर अलौकिक और बहुत ही विस्तार वाला मन्दिर है। उसके समान अथवा उससे विशेष कोई मन्दिर नहीं है। ब्रह्मांड यानी चौदह भुवनों में जितना ऐश्वर्य है, सब ही उसमें है और चौदह भुवनों में जो कुछ ऐश्वर्य की प्रतीति होती है, वह इस मंदिर की किंचित् झूंठन है। जो कुछ प्रकाश भिन्न २ व्यक्तियों से फैला हुआ है अथवा जो कुछ शोभा और विजय है वह इस महा मंदिर की चित् छाया है। प्रत्येक इस मंदिर का मालिक बनना चाहता है, नैसर्गिक रीति से सबको ही उस मन्दिर का मालिक बनने की इच्छा होती है, क्योंकि हर एक उसका मालिक ही था। अपनी २ बुद्धि के अनुसार सब ही उसके मालिक बनने का प्रयत्न करते हैं किंतु प्रयत्न करने पर भी प्रयत्न का फल स्वरूप, उसका व्यक्ति

रूप से मालिक कोई नहीं वनता। प्रयत्न सहित अथवा प्रयत्न रहित जो कोई मन्दिर जान जाता है वह ही उसका मालिक-सव का अधिपति होता है। इस मन्दिर में एक विलक्षणता है। मंदिर एक ही है तो भी जो जितना उसको जानता है उतना ही वह उसका अधिपति होता है और जो उस सब महल का अधिपति होता है उसका अधिपतिपना निरंकुश होता है। सुख और आनन्द की अवधि, संपूर्ण आनन्द-अवधि रहित आनन्द की प्राप्ति उस मंदिर के अधिपति को ही होती है। एक समय के प्राप्त किये हुये अधि-पतिपने को कोई भी छुड़ाने को समर्थ नहीं होता। इन्द्रादिक महान् ऐश्वर्य वाले देवता भी उस मन्दिर में निवास करने को असमर्थ हैं। उस मन्दिर को जानने के लिये प्रथम उस मन्दिर का नाम जानना पड़ता है। नाम से वस्तुका संवंध जाना जाता है और संवंध जानने से वस्तु का भाव होता है। नाम के वारंवार जाप यानी निश्चय से वस्तु की दृढ़ता होती है और एकाग्रता से वस्तुका वोध होता है। वस्तु के ज्ञान से वस्तुका मालिक वनता है इसलिये उस मंदिर का नाम और नाम का जाप आरम्भ में उपयोगी है। यह मन्दिर चारों तरफ से दीवारों से घिरा हुआ है। मन्दिर में एक मुख्य फाटक और तीन दालान हैं। दाहिने और वांये दालानों में से प्रत्येक में आठ २ दर हैं और सामने के मध्यम दालान में सात दर हैं। मन्दिर के ऊपर एक सुशोभित गुम्वज है जो तीन बुरजों के मिलान से वना हुआ है। ऊपर एक शंखाकृति का सुवर्ण काम कलश है जो शंख के समान तीन आवृत से पूर्ण है उसकी अंति

नोक आसमान की तरफ बहुत सूक्ष्म होकर गई हुई है। यह ही गायत्री रूप मन्दिर है।

माया की परिधि मन्दिर की बाहर की दीवार गायत्री का स्थूल स्थान है। गायत्री के तीन पाद मन्दिर के दालान हैं। मुख से जाप होता है, मुख ही मन्दिर का मुख है। 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' मध्य का सात दर वाला दालान है। भर्गोदेवस्यधीमहि' दहिनी तरफ का और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' बांई तरफ का दालान है। मन्दिर के ऊपर का गुम्बज भूः भुवः और स्वः तीनों व्याहृतियें रूप बुरजों से बना हुआ है, ऊपर का सुवर्ण का शंख की आकृति वाला कलश ॐकार है; क्योंकि शंख में से जैसे स्वाभाविक शब्द होता है ऐसा ही शब्द उसमें से निकलता है। शंख में जैसे साढ़े तीन चक्र होते हैं इसी प्रकार ॐकार में भी अ, उ, म, और अमात्र रूप आधी मात्रा मिल कर साढ़े तीन आवृत हैं। कलश के ऊपर की तरफ़ जो बहुत सूक्ष्म नोक है वह अमात्र रूप शुद्ध चैतन्य है इस प्रकार यह गायत्री से लक्षित हुआ ब्रह्म मन्दिर है। गायत्री के तीनों पाद रूप तीन दालान इस मन्दिर का स्थूल और नीचे का भाग है। तीन व्याहृति रूप बुरजों से बना हुआ मन्दिर का सूक्ष्म और मध्य का भाग है ॐकार की तीन मात्रा सुवर्ण का कलश, मन्दिर का कारण स्वरूप और ऊपर का भाग है। अमात्र रूप नोक शुद्ध ब्रह्म स्वरूप है, जो गायत्री के तीन पाद, तीन व्याहृति और ॐकार की तीनों मात्रा इन सब अध्यस्त का अधिष्ठान है। अध्यस्त दिखावे मात्र और अधिष्ठान सत्य वस्तु होती है। इस महल का जानना ज्ञान का होना है। जब अधिष्ठान का पूर्ण बोध

हो जाता है तब अध्यस्त पदार्थों की सत्यता की निवृत्ति होजाती है, और अधिष्ठान का ज्ञाता ज्ञान स्वरूप होजाता है। ज्ञान स्वरूप में स्थिति होना उस महल का अधिपति होना है। यह गायत्री का अन्तिम रहस्य है। ॐकार, व्याहृति और गायत्री, ये ज्ञान, उपासना और कर्म स्वरूप है वह ही ऋक् यजु और साम स्वरूप है, वह ही तीनों लोक स्वरूप है। गायत्री कर्मी को कर्म फल और उपासक को उपासना का फल देने वाली और ज्ञानी को ज्ञान स्वरूप है। इस प्रकार गायत्री सबका सब समय हित करने वाली है और सब प्रकार के अधिकारियों को उनके अधिकार यानी ज्ञान क्रिया और भाव के अनुसार अवश्य फल देती है।

समुद्र पार के देश का एक राजकुमार किसी कारण से अपने देश से भिन्न होकर घूमता २ समुद्र को उल्लंघन करके उस पार से इस पार आगया और भटकता हुआ एक जंगल में फँस गया। जंगल में अनेक प्रकार के हिंसा करने वाले पशु, सिंह बघेरा हाथी आदिक का बहुत भय था। ऐसा कोई भी सुरक्षित स्थान नहीं था कि जिसके सहारे रात्रि व्यतीत करे। वारंवार पशुओं का भयंकर शब्द होता था। कोई भी उपाय न होने से वह राजकुमार एक विशाल वृक्ष के ऊपर चढ़ गया, वहां भी वह निर्भय न था क्योंकि विषधर सर्प उस वृक्ष पर चढ़ सक्ते थे और ऐसे सर्प वहां बहुत थे। राजकुमार रात्रि भर जागता रहा और विपत्ति का विचार करता रहा। बहुत दिनों तक भटकते रहने के कारण उसके वस्त्र मलिन होगये थे, उसके पास एक तलवार के सिवाय और कुछ न था। उस तलवार के भरोसे ही उसने कष्टमय रात्रि व्यतीत की।

प्रातः काल होते ही तलवार को चारों तरफ चमकाता हुआ वह जंगल में चलने लगा। जंगल कितना है, उसका अन्त कब आवेगा, यह उसे कुछ खबर न थी तो भी वह चलता ही रहा। चलते २ उस जंगल का अन्त आगया और वह एक सुगंधित कमलों के जंगल में आ पहुंचा।

प्रथम जंगल के प्रमाण से यह जंगल छोटा था और उसमें अनेक प्रकार के कमल आदिक पुष्पों का समूह था। इस जंगल के अन्त में राजकुमार को एक बगीचा दिखाई दिया। वह उस बगीचे में घुस गया। बगीचे के भीतर किसी महाराजा के महल के समान एक सुंदर महल उसके देखने में आया। वह महल की तरफ चलने लगा। बगीचे की शोभा और महल की सुंदरता देख २ कर वह प्रसन्न होता था, रात्रि के कष्ट को भूल गया था। अब वह महल के पास आ पहुंचा। यहां तक न तो कोई मनुष्य मिला और न उसे किसी ने जाने से रोका। जब वह महल के समीप पहुंचा तो पास ही एक सुंदर शहर हो, ऐसा मालूम हुआ। बाजार खुल रहा था, अनेक प्रकार की ताजी वस्तुयें दुकानों पर रक्खी हुई थीं परन्तु आश्चर्य यह था कि न तो कोई वेचने वाला दीखता था और न कोई खरीदार ही था। सब बाजार सुनसान पड़ा हुआ था। राजकुमार बाजार को छोड़ कर महल में गया। महल बहुत कारीगरी का बना हुआ था। राजकुमार महल के नीचे के सब स्थानों में घूमा परन्तु कोई मनुष्य उसे न दीखा, तब दूसरी मंजिल पर चढ़ा। वहां भी अनेक प्रकार के सामान से सजे हुये अनेक उत्तम स्थान दीखे परन्तु मनुष्य का नाम निशान भी कहीं न मिला।

उसको निश्चय था कि इतने बड़े महल में कोई न कोई अवश्य रहता होगा। अब वह तीसरी मंजिल पर चढ़ा, वहां पर नीचे की दो मंजिल से भी विशेष शोभा थी परन्तु सब ऐश्वर्य निर्जीव था, कोई जीवित प्राणी या मनुष्य दिखाई न पड़ा।

अन्त में वह सब से ऊपर के भाग पर चढ़ा। उसने वहां एक के पीछे एक इस प्रकार तीन कमरे देखे। उनमें से अन्त के कमरे में एक छपर खाट के ऊपर सोती हुई एक परम सुन्दर कन्या देखी। उसकी आकृति देखकर वह मोहित होगया। आज तक उसने अनेक कन्यायें देखी थीं परन्तु जैसा स्वरूप उस कन्या का था ऐसा कभी उसके देखने में नहीं आया था। वह कल्पना के बाहर का स्वरूप था। तुरन्त ही उसकी दृष्टि कन्या की कमर पर पड़ी तो क्या देखा कि उसकी कमर जंजीर से बंधी हुई है और जंजीर पलंग के पास के एक संग मरमर के खंबे से बंधी हुई है। राजकुमार इस प्रकार की अलौकिक सुन्दरी को बंधा हुआ देखकर बहुत आश्चर्य करने लगा और उसने उसी समय यह निश्चय किया कि इस सुन्दरी को अपने प्राण दे कर भी मैं छुड़ाऊंगा, यदि उसके छुड़ाने में मैं जीता बचा तो उससे ही मैं अपना विवाह करूंगा और यदि कदाचित् वह मुझे ना पसंद करेगी तो मैं ब्रह्मचर्य धारण करके अपनी शेष आयु व्यतीत करूंगा परन्तु और से विवाह न करूंगा। ऐसा निश्चय कर, किस का महल है इत्यादि कुछ विचार न करके कुमार ने कन्या को जगाया।

कन्या जागते ही आश्चर्यंकरती हुई बोली "सर्व नाश मनुष्य ! तुम यहां कैसे आगये ? यहां से जल्दी भाग

जाओ, नहीं तो राक्षस आकर तुमको मार डालेंगे!" राज पुत्र बोला "हे सुन्दरी! मैं अपना वृत्तांत तो पीछे कहूंगा, प्रथम तू मुझ से कह कि तू कौन है और इस बंधन में क्यों पड़ी है? तुझको बंधन करने वाला कौन है?" कन्या बोली "मैं शान्ति प्रदेश के राजा की पुत्री हूँ, प्रथम यह देश बहुत आवाद था। राक्षसों ने आकर यहां की सब प्रजा को मार खाया। तब से यह देश मनुष्य रहित होगया है। उन राक्षसों में एक बूढी राक्षसी है, वह मुझ पर बहुत प्रेम करती है इसी कारण राक्षसों ने मुझे अभी तक जीता रक्खा है। जब वे बाहर जंगल में शिकार खेलने जाते हैं तब मुझे जंजीर से बांध जाते हैं और जब आते हैं तब जंजीर खोल देते हैं।"

राजकुमार बोला "हे राजकन्ये! जो बूढ़ी राक्षसी तुझ पर प्रेम करती है. तू उससे राक्षसों के मरने का उपाय पूछ सक्ती है, और यदि तू उससे उनके मरने का उपाय पूछ ले तो मैं तेरा उद्धार करने को तैयार हूँ!" कन्या बोली "मैं प्रयत्न करूंगी, अब तुम यहां से चले जाओ, नहीं तो राक्षस आगये तो मार डालेंगे। तुम राज महल में मत रहना, यहां से थोड़ी दूर पर एक पद्म पुंज है। उसमें बहुत बड़े २ पुष्प हैं, उन पुष्पों में तुम छुप जाना।"

राजकुमार पद्म पुष्प के जंगल में गया। पुष्प बहुत बड़े २ थे और उनकी एक २ पंखडी इतनी बड़ी थी कि उसमें एक मनुष्य छुप सक्ता था। आश्चर्य करते हुये राजपुत्र रात्रि भर उसमें छुपा रहा। सायंकाल होते ही सब राक्षस वृद्ध राक्षसी सहित शिकार से लौटकर आये। सब राक्षस अपने २ स्थान पर चले गये और वृद्ध राक्षसी राज-

कन्या के शिर में तेल डालने वैठी। थोड़ा सा तेल नेत्रों में पड़ने से राजकन्या के नेत्रों में से आंसुओं की धारा वहने लगीं। वृद्ध राक्षसी के पैर पर आंसुओं की बूंद पड़ने से उसने राज कुमारी की तरफ देखा तो वह रोती हुई मालूम हुई। राक्षसी बोली "पुत्री! तू क्यों रोती है? तुझ को क्या दुःख है?" राज कन्या रोती हुई बोली "मैया! तू तो मुझ पर अत्यन्त प्रेम करती है! तू मुझे बांध कर दिन में बाहर चली जाती है, यदि तू बाहर मर जाय तो मेरा क्या हाल होगा? तेरे विना और राक्षस मुझे एक क्षण भी जीती नहीं रहने देंगे।" राक्षसी खिलखिला कर हंस कर बोली "पागल! यह तुझसे किसने कहा कि मैं मर जाऊंगी।" राज कन्या बोली "तब! मैया क्या तू अमर है?"

राक्षसी बोली "नहीं! हम लोग अमर तो नहीं हैं परन्तु हम को मारने का काम वहुत कठिन है! इस लिये ही मैं कहती हूं कि हम अमर के समान ही हैं। हमारे मरने का जो भेद है वह मैं तुम से कहती हूँ, उसे सुनः—तू जानती है कि पास के पद्म बन में वहुत बड़े २ पद्म के पुष्प हैं। उन में एक सब से वड़ा पद्म पुष्प है, उसमें एक भ्रमर की जोड़ी रहती है। जब समुद्र पार के देश का राज कुमार यहां आकर उस बड़े पद्म पुष्प को काटे, तब उसमें से एक भ्रमर की जोड़ी निकलेगी, यदि उस भ्रमर की जोड़ी को राज कुमार दोनों हाथों से एक साथ मार डाले तो हमारी मृत्यु हो जाय, अन्यथा नहीं हो सक्ती। इस प्रकार हमारे मरण का निर्माण हो चुका है। यदि उस जोड़ी को एक साथ मारने में असमर्थ हो जाय या एक को मार डाले तो हम जितने

राक्षस हैं, उससे दुगने हो कर उस के टुकड़े २ कर मार डालेंगे ! प्रथम तो समुद्र पार से इस देश में आना ही कठिन है, फिर हमारी मृत्यु इस प्रकार है, इस बात की उसे खबर नहीं है, भ्रमर की जोड़ी को दोनों हाथों से मारना कठिन है इस लिये हमारी भी मृत्यु नहीं है !"

राज कन्या बोली "माता जी ! तेरी इस बात से मुझे शांति हुई है, तुम्हारी मृत्यु होना कोई सहज बात नहीं है ! अब मुझे कुछ भय नहीं है !" रात्रि होते ही सब ने आराम किया। सुबह होते ही वृद्ध राक्षसी ने राज कन्या को खंबे की जंजीर से बांधा और सब राक्षस शिकार खेलने चले गये। उनके जाने के बाद राज कुमार राज कन्या के पास आया। राज कन्या ने कहा "मैंने राक्षसी से राक्षसों के मृत्यु होने का उपाय पूछ लिया है, तुम रात्रि को जिस पद्म पुष्प के बन में रहे थे, उसमें एक सबसे बड़ा पद्म पुष्प है। जब तुम उस को तोड़ोगे तब उस में से एक काला और एक लाल दो भ्रमर निकलेंगे, उस जोड़े को जब तुम एक ही साथ दोनों हाथों से मार डालोगे तब सब राक्षस मर जाँयगे। बहुत सावधानी रखने का काम है। यदि दोनों एक साथ न मरे, उन में से एक भी उड़ गया तो जितने राक्षस हैं उससे दुगने हो कर तुम को मार डालेंगे ! क्या तुम इस कार्य को कर सक्ते हो ? अपनी शक्ति का विचार करके इस कार्य में हाथ डालना चाहिये। शक्ति के विचार रहित कार्य करने में कार्य निष्फल होगा और साथ ही तुम्हारा भी नाश होगा।"

. . . . . .

राज पुत्र बोला " वाह ! दो भ्रमरों के मारने में विशेषता ही क्या है ! मुझे निश्चय है कि मैं इस कार्य के करने में समर्थ हूं, मैं अवश्य उन भ्रमरों को मार कर तुमको इस बंधन से मुक्त करूंगा । "

राजकुमारी राजकुमार के इन शौर्य के वचनों स प्रसन्न हुई । उसने अपने रात्रि के भोजन में से कुछ भोजन राजकुमार के देने को बचा रक्खा था, वह भोजन उसको दिया, राजकुमार भोजन करके तृप्त हुआ। पद्म वन में जाकर उसने बड़े से बड़े पद्म पुष्प को ढूंढ निकाला और उस के पास जाकर उसने उसको तोड़ डाला। उसमें से घु घु घु करते हुये दो भ्रमर निकले ! ज्यों ही वे उड़ कर जाने लगे, त्यों ही उसने बड़ी तेजी से, दोनों हाथों की झपट्ट से भ्रमरों को यम के धाम में पहुँचा दिया—मार डाला। जिस समय भ्रमर मरण को प्राप्त हुये उसी समय जो राक्षस जहां २ विचर रहे थे वहां ही सब एक साथ गिर गये। मरते समय इन्होंने एक भयंकर चीख लगाई, जिससे समुद्र का जल खलबला उठा और पृथ्वी और वृक्षादि कांपने लगे। राजकुमारी भय भीत हो कर मूर्छित हो गई। राज कुमार अपने कार्य को समाप्त करके पद्म वन में से बाहर निकल कर घूमता हुआ, मरण को प्राप्त हुये राक्षसों को देखता हुआ और अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ राजकुमारी के पास पहुंचा। उसे मूर्छित देख कर प्रथम तो चिंता में पड़ गया फिर पीछे उसने उसे जगाया। राजकुमारी जाग कर राजकुमार को सामने खड़ा हुआ देखकर प्रसन्न हुई। राजकुमार बोला "प्रिये !

तेरी कृपा और तेरे वताये हुये उपाय से मैं राक्षसों के मारने में समर्थ हुआ, वे सब मर गये हैं, मैं उनको मरा हुआ देखता आया हूँ, अब तू निर्भय है!" यह कह कर राज कुमार ने आवेश में आकर राजकुमारी की जंजीर को अपनी तलवार से काट डाला। [दो]नों प्रेम से मिले, पश्चात् पुष्पों की दो माला तैयार करके एक ने दूसरे के गले में डाल कर विवाह कर लिया और निर्भय हो कर बहुत समय तक शांति प्रदेश में रहे। दोनों का विवाह होने से दोनों में अपूर्व सामर्थ्य प्राप्त होगया था। अब वे दोनों दो नहीं रहे थे परन्तु एक ही स्वरूप वन गये थे। पश्चात् वे अपने पराक्रम से समुद्र पार के अपने राज्य में पहुंच गये और वहां उन्हें अविचल सुख प्राप्त हुआ।

राजकुमार का राजकुमारी की सम्मति से कार्य करना, यह ही गायत्री का तत्त्व है। इस पूर्ण रहस्य से जो जितने न्यून प्रमाण में गायत्री के भाव–अर्थ–तत्त्व को जानता है, उसको उसीके अनुसार न्यून फल प्राप्त होता है। जो ॐकार का अर्थतत्त्व है वह ह[ी] गायत्री का है। महावाक्य द्वारा अधिकारी को गुरु उपदेश करके जिस तत्त्व का वोध कराता है वह गायत्री का ही तत्त्व–अर्थ है। जिसको विष्णु का परम पद कहते हैं, जो स्वरूप स्थिति है वह ही गायत्री का अर्थ है। जो राजकुमारी वन्धन में पड़ी हुई राक्षसों के वश में थी, वह मुमुक्षता है, उसका शांति प्रदेश सतोगुण का है। उस देश में रजोगुण और तमोगुण की प्रजा रूप राक्षस घुस आये थे और सतोगुण की प्रजा और राजा को भक्षण कर गये थे। वासना वृद्ध राक्षसी थी जो राजकुमारी पर पुत्री के समान प्रेम

करती थी। समुद्र पार का राजकुमार जीव था जब वह आत्मा-भास युक्त कुमारी के पास पहुंचा तब मुमुक्षुता की युक्ति से राज-कुमारी को बन्धन से मुक्त कर सका। सब राक्षस रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव वाले, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर, स्वार्थ, पाप, छल, अधर्म आदिक आसुरी संपत्ति की प्रजा थी। पद्म वन ब्रह्मा की अप्रकट अवस्था थी। उसमें घूमने वाला गूँझ करने वाला भ्रमर का जोड़ा जो निकला था वह द्वैत था। द्वैत ही राक्षसों की उत्पत्ति का कारण था। जब द्वैत—दोनों भ्रमर मारे गये तब राक्षसों का मरण हुआ और मुमुक्षुता से जीव का लग्न हुआ। मुमुक्षुता जीव सें भिन्न न रह सकी। अद्वैत की प्राप्ति होते ही सामर्थ्य प्राप्त हो जाना, व्यापक भाव का होना है। यह ही परम पद है।

इस दृष्टांत में तीन जंगलों का यह भाव है:—प्रथम जंगल जाग्रत् जगत् स्वरूप गायत्री का एक पाद स्थूल रूप है, दूसरा जंगल स्वप्न रूप जगत् गायत्री का दूसरा पाद सूक्ष्म रूप है और तीसरा जंगल सुषुप्ति रूप जगत् पद्म वन गायत्री का तीसरा पाद कारण रूप है, राज महल व्याहृति रूप है। नीचे का भाग भूः रूप, मध्य का भाग भुवः रूप और ऊपर का भाग स्वः रूप है। स्वः में मुमुक्षता रूप कन्या विराजमान है। वह नींद में पड़ी हुई थी, जगाते ही जाग गई। पद्म को तोड़ना, भ्रमर को मारना और मुमु-क्षुता से विवाह करना ॐकार के तीन पाद हैं और अद्वैत होकर स्वरूप स्थिति रूप ॐ का अमात्र है। इस प्रकार गायत्री के चित्र को इस दृष्टांत से समझना चाहिये।

गायत्री का तत्त्व सबका आदि अविचल अधिष्ठान है, अधिष्ठान के बोध से अधिष्ठान के भाव में स्थिति होना अद्वैत स्वरूप है। जब तक द्वैत का भाव है तब तक सब आपत्तियां और जगत् है। अद्वैत भाव होते ही सब आपत्तियां भाग जाती हैं, जगत् और जगत् का चक्र निवृत्त हो जाते हैं, और परम तत्त्व प्रकाशित होता है। त्रिगुणात्मक जो कुछ दीखता है वह सब एक ही स्वरूप है। इस प्रकार एक ही गाना-समझना, तीनों को एक करके टिकना गायत्री है। इस भाव रहित गायत्री पूर्ण फल नहीं देती। सारांश परब्रह्म का स्वरूप ही गायत्री का स्वरूप है। ॐ ॐ ॐ।

ॐकार
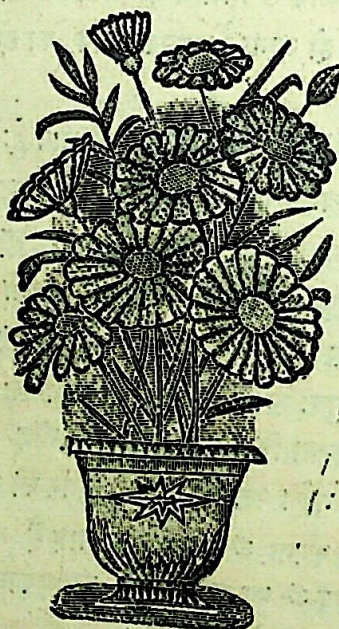
प्राचीन सब सास्त्रों और वैदिक मंत्रों में ॐकार की विशेष महत्वता का वर्णन है। प्राचीन आर्य वैदिक मंत्रों में प्रथम ही ॐकार का दर्शन होता है । यदि मंत्र आदि में ॐकार न होय तो उस की महत्वता नहीं समझी जाती। ॐकार एकात्तर मंत्र है, वह गम्भीर भावार्थ से भरा हुआ है, परब्रह्म का प्रतीक होने से ब्रह्म का स्वरूप है। प्रतीक का अर्थ, प्रति, नकल, चित्र और प्रतिमा है। ब्रह्म सामान्य मनुष्यों के लत्त में आना कठिन है, उस को थोड़े में लत्त कराने का—समझाने का एकात्तर मंत्र ॐकार है। मन्त्र, मन्तव्य विचार ने को कहते हैं ! ॐकार मन्त्र ही वास्तविक विचार करने योग्य-समझने योग्य है। सब मन्त्रों में ॐ को प्रथम लगाने का अर्थ-भाव चमत्कारी है। ॐ मय ब्रह्मांड के अधिष्ठान सहित ॐ है। ब्रह्मांड और ब्रह्मांड की व्यक्तियों के पृथक् पृथक् भाव की अंतिम गति परब्रह्म है इस लिये उस पर ब्रह्म का ध्यान रखते हुये अन्य मंत्रों का भावार्थ सिद्ध करना चाहिये, इस उच्च आशय से ही सब मंत्रों में ॐ प्रथम लगाया गया है। ॐकार के अधिष्ठान (स्वरूप) के भाव सहित अन्य मंत्रों का जाप करने से ॐ जो आत्मा स्वरूप है उस के संस्कारों को दृढ़ करते जाते हैं। ॐएकात्तर मंत्र होते हुये वर्णातीत और शब्दातीत कहा जाता है। एकात्तर मंत्र का सूक्ष्म अर्थ यह है:—नाश न होने वाला ऐसा जो एक अद्वितीय है वह ही एकात्तर है। वर्ण और शब्द माया की संज्ञा के हैं वे लत्त

निमित्त माया में होते हुये भी अधिष्ठान स्वरूप मायातीत हैं इस विशेषता के कारण वह एकाक्षर कहा जाता है। नाश न होने वाला ऐसा जो एक सो परब्रह्म एकाक्षर है।

आद्यवेद ॐ है। वेद ॐकार का विस्तार है, उस के विस्तार में ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद हैं। वेद अत्यन्त गम्भीर अर्थ जिस एकाक्षर ॐ में से किया गया है वह ॐ कितने गम्भीर अर्थ वाला होगा! परब्रह्म अधिष्ठान और ब्रह्मांड अध्यस्त सब ही ॐ है। ॐ परब्रह्म है इसलिये वह अणु २ में भरा हुआ है, जैसे समष्टि ॐ रूप है वैसे ही व्यष्टि सृष्टि भी ॐ रूप है। जीवों की पृथक् २ सृष्टि कहते हैं और वे सब जिस एक में होती हैं, ऐसी ईश्वर सृष्टि को समष्टि कहते हैं। मनुष्यों का भिन्न भिन्न घर व्यष्टि है और शहर के एक नाम से सब घरों को एक भाव से समझना समष्टि है। व्यष्टि अल्प को कहते है और समष्टि महान् को कहते हैं। व्यष्टि भाव और समष्टि भाव दोनों विकार हैं, दोनों के विकार को छोड़ कर दोनों की एकता है। जिस में व्यष्टि और समष्टि भ्रांति से प्रतीत होती है वह ही ॐ है। ॐ को प्रणव भी कहते हैं, जो सब से आद्य प्रबल शब्द है वह प्रणव है, वह ही ॐ है। शास्त्र में प्रणव की उपासना अनेक प्रकार से बताई गई है। उनमें अहंग्रह और प्रतीक दो उपासनायें मुख्य हैं। उपासना का उपास्य अपना आत्मा ग्रहण करके जो उपासना की जाती है वह अहंग्रह उपासना है और दूसरे का अवलम्बन करके, दूसरे के भाव से जो उपासना की जाती है वह प्रतीक उपासना है। प्रतीक उपासना उपासक को अन्तःकरण शुद्ध करके पवित्र बनाने वाली है और अहंग्रह से दृढ़ता होना ज्ञान की स्वरूप स्थिति है।

ॐ में चार पाद हैं इसलिये चार पाद होने से वह अवयव वाला है ऐसा न समझना चाहिये क्योंकि चार पाद समझाने के लिये हैं। जिन चार पादों से उसको समझाया जाता है उन चार पादों को मात्रा भी कहते हैं, वे ये हैं:—अकार, उकार, मकार और अमात्र। अकार प्रथम पाद है, उकार द्वितीय पाद है, मकार त्रितीय पाद है और अमात्र चतुर्थ पाद है। इनमें से अकार, उकार और मकार माया में हैं इसलिये उन्हें अधिष्टान सहित समझना चाहिये और चौथा अमात्र पाद माया रहित शुद्ध अधिष्ठान है। ॐकार की वर्णाकृति जो शास्त्रों में देखने में आती है उसमें पाद (मात्राओं) का भाव इस प्रकार है:—बांई तरफ जो अर्ध चन्द्राकार है वह अकार है, उसके नीचे ऐसा ही दूसरा चन्द्राकार जो प्रथम से मिला हुआ है, उकार है, और मध्य में से जुड़ा हुआ आगे जो बिन्दु है वह मकार रूप है। अकार सहित उकार, उकार है और अकार, उकार सहित मकार, मकार है। ये तीनों ऊपर के अर्ध चन्द्र के नीचे हैं, अर्ध चन्द्र माया को दिखलाता है और उसके ऊपर मध्य में जो बिन्दु है वह अमात्र है और शुद्ध स्वरूप है। उस शुद्ध अमात्र का प्रकाश जो माया के सत् अंश में होकर पड़ता है वह उत्पत्ति रूप अकार है, जो प्रकाश माया के रजो अंश में पड़ के बाहर आता है वह उकार है, और जो माया के तमो अंश में पड़ के बाहर आता है वह मकार है। उकार में एक प्रकाश तो माया के रजो अंश में से और पूर्व वाले अकार का होता है इसी प्रकार मकार में एक प्रकाश तो माया के तमो अंश में से, दूसरा उकार का और तीसरा अकार का होता है। अमात्र स्वयं शुद्ध

स्वरूप है। उत्पत्ति, स्थिति, और लय, अकार, उकार और मकार है। चैतन्य का प्रकाश लेकर उत्पत्ति सतोगुण से, स्थिति रजोगुण से और लय तमोगुण से होती है। स्थिति उत्पत्ति की होती है इस लिये उन दोनों का सम्बंध है और लय, उत्पत्ति और स्थिति की होने से दोनों से सम्बंध रखती है। यह सब कुछ भेद होते हुये भी, भेद भ्रांति रूप होने से वह सब शुद्ध परब्रह्म ही है, इस प्रकार बोध होना ॐ की आकृति का अर्थ है।

परब्रह्म के सिवाय वस्तु स्वरूप और कोई पदार्थ नहीं है, इस लिये दृश्य अदृश्य स्वरूप जो कुछ है वह सब परब्रह्म ही है। इसी प्रकार ॐकार भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल स्वरूप है और तीनों काल से अतीत भी है।

प्रथम पाद अकार विश्व अर्थात् जगत् रूप है उस की अवस्था बाहर के विषयों का ज्ञान होना रूप जाग्रत् है, उसके सात अंग हैं, उन्नीस मुख हैं, और स्थूल विषयों का भोग कराने वाला है। [१] मस्तक [२] चक्षु [आदित्य] [३] सर्व दिशाओं में घूमने वाला वायु, प्राण, [४] सर्व व्यापी आकाश [५] अन्नादिकों की उत्पत्ति का साधन रूप जल [बस्ति] [६] पृथ्वी रूप पाद और [७] आहवनीय अग्नि ये सात अंग हैं। उन्नीस मुख इस प्रकार हैं:—पांच ज्ञानेन्द्रि, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन बुद्धि, चित्त और अहंकार।

दूसरा पाद उकार तैजसरूप है, आंतर प्रकाश में दीखता है, स्वप्नावस्था है, अंतर विषयों के जानने रूप है। उसके सात अंग

और उन्नीस मुख हैं; सूक्ष्म विषयों का भोगने वाला है, प्रथम पाद के समान सात अंग और मुख सूक्ष्म हैं।

तीसरा पाद मकार प्राज्ञ [ज्ञाता] रूप है, सुषुप्ति अवस्था है। सोया हुआ पुरुष जो किसी प्रकार की कामना नहीं करता, स्वप्न नहीं देखता जिस को सब एक होता है, उस को प्रज्ञान घन कहते हैं, वह आनन्दमय है, आनन्द का भोक्ता है, उसी को चेतोन्मुख कहते हैं क्योंकि वह स्वप्न और जाग्रत् की चैतन्यता का द्वार रूप है। चैतन्य सब का ईश्वर है, सब का ज्ञाता रूप है, अंतर्यामी है, सब का कारण रूप है। भूतों का उत्पत्ति स्थान और आश्रय रूप है।

चौथा पाद अमात्र, आंतर और बाहर जानने वाला नहीं है, स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही को नहीं जानता, वह प्रज्ञान घन नहीं है, प्रज्ञ अप्रज्ञ नहीं है, उस का स्वरूप देखने में नहीं आता, वह व्यवहार में नहीं आता, ग्रहण न किया जाय, ऐसा है, अलक्षणीय और अचिंतनीय है, वह अवर्णीय चेतन का सार रूप है, सब प्रपंच से रहित, शांत, शिव और अद्वैत रूप है, उस को ही आत्मा कहते हैं, वह ही जाननें योग्य है।

ॐकार के चारों पाद समझने के लिये नीचे के कोष्टक में कई भाग दिखलाते है इससे यह न समझना चाहिये कि ये भाग वास्तविक हैं और पृथक् ही हैं, पृथक्ता लेकर एक दूसरें में मिलाते हुये सब को एक कर के समझना यह ॐकार है।

ॐकार विभाग कोष्टक ।

	प्रथमपाद	द्वितीयपाद	तृतीयपाद	चतुर्थपाद
अवस्था	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	तुर्या
ज्ञान	बाहर	आंतर	आंतर बाहर शून्य	स्वरूप
स्थान	नेत्र	कंठ	हृदय	ब्रह्मरंध्र
भोग	स्थूलभोग	सूक्ष्म भोग	आनन्द	आनन्दस्वरूप
शरीर	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	कारणातीत
सृष्टि	उत्पत्ति	स्थिति	लय	ब्रह्म
गुण	सत्त्व	रज	तम	गुणातीत
देवता	ब्रह्मा	विष्णु	महेश	ब्रह्म
काल	भूत	वर्तमान	भविष्यत्	कालातीत
ईश्वर	वैश्वानर	हिरण्यगर्भ	ईश्वर	ब्रह्म
वर्ण	शूद्र	वैश्य	क्षत्रिय	ब्राह्मण
आश्रम	ब्रह्मचर्य	गृहस्थ	वानप्रस्थ	संन्यास
खानि	उद्भिज	स्वेदज	अंडज	जरायुज
साधन	कर्म	उपासना	ज्ञान	ज्ञानस्वरूप
व्यापार	सेवा	वाणिज्य	रक्षण	अधिष्ठान
वेद	ऋक	यजु	साम	ॐ
पुरुषार्थ	धर्म	अर्थ	काम	मोक्ष
लोक	भूः	भुवः	स्वः	महः
संज्ञा	विश्व	तैजस्	प्राज्ञ	ब्रह्म

पिंड शरीर को कहते हैं और सब लोक सहित संसार को ब्रह्मांड कहते हैं। पिंड और ब्रह्मांड की एकता है, ब्रह्मांड का छोटा स्वरूप पिंड है इस लिये ॐकार के चारों पाद पिंड और ब्रह्मांड में समान है। पिंड-शरीर से ब्रह्मांड की एकत्ता करनी आवश्यक है इस हेतु से ही ॐकार के चारों पादों की रचना और व्याख्या है।

एक वार एक साधु ने एक अलौकिक स्थान देखने का वर्णन मुझ से किया था, उसको मैं तुझ को सुनाता हूँ:-

साधुः-जब मैं संसार में विचर रहा था और आत्मबोध के निमित्त अनेक साधु संतों से मिला करता था तब एक वार एक अगम्य वन में एक महात्मा का दर्शन हुआ। जब मैं ने उनसे आत्मबोध के निमित्त पूंछा तब वे इस प्रकार कहने लगे:-महात्माः-आत्मा ॐकार है और ॐकार आत्मा है। ॐकार को जाने बिना कोई भी आत्मा को नहीं जान सकता जिससे तू आत्मबोध की जिज्ञासा करता है वह ही ॐकार है. वह ही आत्मा है. वह ही तू है। (थोड़ा हंस कर) कैसी मूर्खता ! महात्मा का कहा हुआ मेरी समझ में कुछ भी न आया, मैं इधर उधर की, विना शिर पैर की शंकायें करने लगा तब फिर महात्मा ने कहाः-महात्माः-तू उत्तर की तरफ चला जा, वहां तुझको ॐकार मिलेगा जब तू उसे जान लेगा तब तुझे आत्म-बोध होगा। मैं:-महाराज ! ॐकार कैसा है ? महात्माः—(हंस कर) बहुत ही अच्छा है ! जिस स्थान पर तुझे अत्यंत ही प्रसन्नता प्राप्त हो, उसीको आत्मा, ॐकार जानियो, यदि तू वहां थोड़ी देर टिकेगा तो उसको जान जायगा !

मैं यह सुन कर उत्तर दिशा को चला, कोई पांच ही कदम चला हूँगा कि एक उत्तम स्थान देखने में आया वहां एक साइन बोर्ड टंगा हुआ था और उस पर "भूमा" शब्द लिखा हुआ था। मैं उसे देख कर सोचने लगा "मैं तो ओंकार की खोज में निकला हूँ, यह तो भूमा है, भला इसमें जाकर देखूं तो सही कि जैसी प्रसन्नता महात्मा ने बताई थी वैसी वहां है या नहीं" यह विचार कर मैं भीतर गया, भीतर घुसते ही सुगंधित मृदु वायु की एक ऐसी लहर आई कि उससे मैं अत्यन्त ही दिव्य विलक्षण स्वभाव वाला होगया! मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं किसी उत्तम कारीगर के बनाये हुये आनन्द के झूले में झूल रहा हूँ, मेरे अध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीनों प्रकार के ताप भाग गये हैं! उस विलक्षण स्थान के वायु ने जो आनन्द मुझे अनुभव कराया वह मैं ही जानता हूं जिह्वा से उस का वर्णन नहीं हो सक्ता! शान्ति और आनन्द के सिवाय वहां और कोई पदार्थ नहीं दीखता था, वहां के पदार्थों की सुन्दरता अवर्णीय थी! मैं एक तरफ़ चुपचाप खड़ा होकर देखने लगा तो क्या देखा कि उस भूमा रूप भूमि में कई बीज जो प्रथम से ही पड़े हुये थे, क्रम क्रम से बढ़ने लगे, जैसे बीज में से वृक्ष उत्पन्न होता है वैसे ही उन बीजों में से मनुष्य, देव, दानव, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, भूमि, पर्वत, नदी आदिक सब संसार उत्पन्न हो गया और बढ़ कर पांचों इन्द्रियों के भोगों में प्रवर्त हो गया, कभी क्षणिक सुख, कभी मरण होने लगा। महान् कष्ट भोगें तो भी मूर्ख भोगों को न छोड़ें! पश्चात् सब ने मिल कर बहुत ही तीव्र मद्य पान किया, तब

अर्ध चेतन हो कर इधर उधर गिरने लगे, भला बुरा बकने लगे, सब के सब अंधे हों ऐसे मालूम होते थे, चेतन अवस्था में जो अनेक प्रकार की वासनायें पड़ी हुई थीं उन के बुद बुदों के उफान का ही चित्र देख रहे थे, इस अवस्था के थोड़ी देर पीछे मद्य का नशा और भी तीव्रता से चढ़ा, तब तो सब अचेतन हो गये! अपने पराये किसी का भी किसी को भान न रहा! नशे के कारण कुछ दिनों पीछे विचारों का मृत्यु हो गया, सब के शरीर पृथ्वी में मिल गये और वासना रूप बीज पृथ्वी में गड़ गये। थोड़े समय पीछे प्रारम्भ में जैसे देखने में आये थे वैसे ही सब बीज फिर वृद्धि को प्राप्त हुये और क्रमानुसार सब खेल दिखाई दिया। उस समय मेरे भीतर से एक शब्द उठा, वह शब्द उन महात्मा का था जिन्हों ने मुझे इस स्थान पर भेजा था। वह शब्द यह था:—"सब तमाशा जो तू ने देखा है वह ही ॐकार है, वह ही भूमा है. वह ही तू है उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप क्रिया भूमा के ऊपर होती है, भूमा सिवाय क्रिया नहीं हो सक्ती, क्रिया होने पर भी भूमा विकार रहित रहता है, भूमा में अंतर नहीं होता, चाहे वह विकार वाली दीखे, चाहे वह विचार रहित दीखे, वह ही अविकारी वस्तु ॐकार है। सब का अधिष्ठान रूप ज्यों का त्यों रहने वाला ॐकार है। पूर्व के पड़े हुये अविद्या के बीज से उन सब की जो उत्पत्ति हुई है वह उत्पत्ति भूमा सहित ॐकार की प्रथम मात्रा अकार है, जो भोग की जाग्रत् अवस्था है। नशे में अर्ध चेतन में बाहर के भाव रहित वासना में घूमने वाली स्वप्नावस्था अधिष्ठान सहित ॐकार की दूसरी मात्रा उकार है।

अचेतन समान हो कर गिरना अधिष्ठान सहित लय जो सुषुप्ति है वह ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है। इन तीनों उपाधियों से रहित केवल भूमा मात्र सब का अधिष्ठान, सब से निर्लेप जो शब्द तत्त्व है वह ॐकार का चतुर्थ पाद अमात्र है। माया के दृश्य उत्पत्ति और नाश वाले हैं इस लिये वे असत् और भ्रांति रूप हैं। सब में अविकारी अनुस्यूत अद्वैत तत्त्व के सिवाय और कुछ नहीं है क्योंकि भ्रांति वस्तु रूप नहीं होती, जो सब के विकारवान् होने में भी अविचल रहता है, वह की ॐकार है, वह ही आत्मा है, उस को जानना आत्मबोध है, 'वह ही मैं हूं' ऐसा अखंडित निश्चय रहना बोध का स्वरूप है वह ही मैं हूं, वह ही तू है, और सब संसार वह ही है, यह बोध है।"

ॐ पाद वाला नहीं है किंतु संसारियों को समझाने के लिये पाद रूप से उसकी व्याख्या की गई है। पाद वाला प्रतीत होते हुये भी जो अपाद रूप है वह ही ॐकार है। जो प्रथम पाद में है वह ही दूसरे पाद में है, जो दूसरे पाद में है वह ही तीसरे पाद में है और जो तीसरे पाद में है वह ही चौथे अमात्र अपाद में है। जब प्रथम पाद के भाव को दूसरे पाद के भाव में ले जाते हैं तब प्रथम पाद की उपाधि नहीं रहती, जब दूसरे पाद को उठा कर तीसरे पाद में ले जाते हैं तब दूसरे पाद की उपाधि नहीं रहती, जब तीसरे पाद को अपाद में ले जाते हैं तब तीसरे पाद की उपाधि नहीं रहती, और चौथे पाद में एकत्र होते ही पादों की संख्या उड़ जाती है और एक ही अविचल, पूर्ण तत्त्व शेष रहता है वही ॐकार है।

एक ज्ञानवान् धात्री वालकों को खिलाने पिलाने पर नौकर थी, वह वालकों को प्रसन्न करने के लिये कभी २ आश्चर्य जनक वार्ता सुनाया करती थी, वालक सुन कर प्रसन्न होते थे। धात्री जो कहानियां कहा करती थी वे ज्ञान उपदेश करने वाली होती थीं। वालक उनका अर्थ नहीं समझते थे तो भी प्रसन्न होते थे। धात्री इस प्रकार कहानियां कह कर अपना निदिध्यासन किया करती थीं। बालक कहानियां सुनने के प्रेमी हो गये थे इसलिये वारंवार धात्री से कहा करते थे:—"अम्मा! कोई अच्छी सी कहानी सुना।" धात्री अनेक कहानियां सुनाती, उनमें से एक वार की कहानी इस प्रकार है:—धात्री:—एक बहुत बड़ा देश है, उसकी लम्वाई चौड़ाई का नाप आज तक नहीं हुआ है, उसमें तीन नदियां बहती हैं, एक नदी श्वेत रंग की है, उसमें छोटी वड़ी बहुत सी नौका दौड़ा करती हैं, उनमें से कई तो वायु के वेग से डूव जातीं हैं, कई में जल भर जाता है, कई खड़क से ठोकर खा जाती हैं, कई को बड़े २ मगर मच्छ उलट देते हैं, हजारों मनुष्य डूब जाते हैं, कई मर जाते हैं, कई ऊपर उछलते हैं, यह सव होता रै परन्तु उस नदी में एक बूंद भी जल नहीं है! सब डूबते रहते हैं, कैसा आश्चर्य है! (सब बालक हंसने लगे) एक वालक:—अम्मा! विना जल नाव कैसे चलती हैं? जब जल ही नहीं है तो मनुष्य डूबते किस में हैं? धात्री:—(हंस कर) वह ऐसी ही नदी है! विना जल ही उसमें सब डूबते हैं! (बालक खूब हंसे)। धात्री:—सुनो! दूसरी नदी लाल रंग की है, उसमें छोटी २ नौका चलती हैं, वे इतने वेग से चलती हैं कि रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी और

हवाई जहाज भी उनको कभी पकड़ नहीं सक्ते, वे कभी २ डूबतीं अवश्य हैं, जब वे डूबती हैं तब मनुष्य घबराते हैं, रोते और चिल्लाते हैं। उसमें भी जल किंचित् नहीं है ! जब डूबने वाला डुबकी लेकर ऊपर उछलता है और आंखें खोल कर देखता है तब नाव और नदी दोनों लोप हो जाती हैं ! डूबने वालों के कपड़े तक नहीं भीगते! (लड़के खूब हंसे) धात्रीः--ओर सुनों ! तीसरी नदी काली है, उसमें भी पानी का चिन्ह तक नहीं है ! लाखों मनुष्य, जीव जंतु पशु पत्ती इत्यादि उस नदी पर जाते हैं, वह नदी रात्तसी है सब को खा जाती है—डुबो देती है, खा कर जब उगलती है तब सब मनुष्य जीव जंतु प्रसन्न होते हैं ! उस रात्तसी नदी को कोई दोष नहीं देता, सब मनुष्य आदि रात्तसी का भोजन बनने को दिन प्रति दिन उसके पास जाते रहते हैं। उस रात्तसी का पेट इतना बड़ा है कि सब संसार को खा जाती है तब भी उसको अजीर्ण नहीं होता। ये तीनों नदियां एक दूसरे से संबंध वाली हैं, उनमें विचरने वाले उनके आस पास घूमा करते हैं, बालकों ! वे नदियां बड़ी ही आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं, जो मनुष्य उन नदियों में विचरना छोड़ देते हैं वे उस विशाल देश के राजा हो जाते हैं। बालकः—वे नदियां और वह देश कहां है ? धात्रीः—(अपने शरीर पर हाथ रख कर) इस के भीतर हैं ! (लड़के खूब हंसे) बालकः—अम्मा ! उसे उसमें से निकाल कर हमको दिखला ! धात्रीः—जब तुम बड़े हो जाओगे तब दिखालाऊंगी।

धात्री ने जो कथा कही थी, वह ॐकार की थी, बालक उस कथा को नहीं समझते थे, आप तो समझ गये होंगे ॐकार का अकार प्रथम पाद जाग्रत् अवस्था रूप प्रथम नदी है वह सतोगुण की विशेषता से श्वेत है, उसमें मायिक असत्यता है, सत्यता का जल नहीं है, अनेक प्रकार के विषय रूप वायु मनुष्य रूप नौका को चक्र में डालने वाले हैं, उनमें से बहुत से टूट जाते हैं। ॐकार का दूसरा उकार पाद स्वप्न रूप नदी है, उस में सूक्ष्म नौका है, रजोगुण की विशेषता होने से वह लाल रंग वाली है, उसमें वासना रूप सूक्ष्म नौका वेग से बहती है और डूबती है। माया की होने से उसमें भी सत्यता का जल नहीं है, जब उससे बाहर आते हैं तब जानते हैं कि दुःख रूप वस्त्र जो वहां पहना था वह था ही नहीं, सुख दुःख जागने से झूठा मालूम होता है। ॐकार का तीसरा मकार पाद काले रंग की सुषुप्ति नदी है, उस नदी की तरफ जो जाते हैं उन सब को राक्षसी समान वह नदी खा जाती है, अपना पराया देखना, वस्तु अवस्तुओं का भोग वहां नहीं है। राक्षसी का उगलना सुषुप्ति का छूटना है, जब वह राक्षसी छोड़ती है तब उसे कोई दोष नहीं देता किंतु सब उलटा आनंद मानते हैं, दिन प्रति दिन सुषुप्ति में जाते हैं, वह सब किसी को होती है। जिस देश में वे तीनों नदियां हैं, वह ॐकार का चौथा पाद रूप अमात्र है, वह ब्रह्म है। जब जीव तीनों नदियों में आने जाने से रहित हो जाता है तब स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। ॐकार को संपूर्ण रूप से जानने पर द्वैत भ्रम की निवृत्ति हो जाती है।

जीव व्यष्टि और ईश्वर समष्टि कहलाता है। जीव को जीव की उपाधि है, ईश्वर को ईश्वर की उपाधि है। ये उपाधियां छोटी बड़ी होने पर भी जिस तत्त्व में प्रतीत होती हैं, वह तत्त्व जीव और ईश्वर में भिन्न नहीं है। जब जीव की जाग्रत् अवस्था होती है तब वह विश्व का अभिमानी होने से विश्व कहलाता है और बाहर की सृष्टि के स्थूल शरीर के भान वाला होता है। समष्टि रूप ईश्वर उस अवस्था में समग्र विश्व के अभिमान वाला वैश्वानर कहलाता है और जाग्रत् अवस्था की सब सृष्टि के भान वाला होता है। जीव और ईश्वर दोनों में ॐकार की अकार मात्रा है। जीव और ईश्वर की उपाधि छोड़कर अकार मात्रा एक ही है। जीव की व्यष्टि रूप स्वप्नावस्था सूक्ष्म शरीर में होती है, उसमें वासनामय पदार्थ दीखते हैं, उसके अभिमानी जीवात्मा का नाम तैजस है। समष्टि रूप स्वप्नावस्था की सब सृष्टि का अभिमानी हिरण्यगर्भ कहलाता है। तैजस और हिरण्यगर्भ की उकार मात्रा है। व्यष्टि रूप सुषुप्ति अवस्था का अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाता है और समष्टि रूप सुषुप्ति अवस्था की सब सृष्टि का अभिमानी ईश्वर कहलाता है। प्राज्ञ और ईश्वर की मकार मात्रा है। जीव और ईश्वर की उपाधि से रहित तत्त्व जो अवर्ण है वह ब्रह्म है, वह ॐकार की अमात्रा है। विश्व और वैश्वानर की, तैजस और हिरण्यगर्भ की, प्राज्ञ और ईश्वर की और सब के आद्य स्वरूप ब्रह्म की और अमात्र की एकता है, जो ब्रह्म है वह ही अमात्र है।

हरेक नाम के तीन रूप होते हैं। नाम, नाम का ज्ञान और नाम का अर्थ। जैसे मंत्र शब्द नाम है, मंत्र का ज्ञान ज्ञान है और

मंत्र का अर्थ रूप वस्तु अर्थ है। मंत्र ज्ञान और अर्थ विना अति तुच्छ है, ज्ञान सहित और अर्थ रहित मंत्र भी अल्प है। ज्ञान और अर्थ सहित ही मंत्र यथार्थ फल देने वाला होता है। ॐ यह मंत्र का नाम है, ॐ ब्रह्म है यह ज्ञान है, और दृश्य अदृश्य सहित जो कुछ है वह ब्रह्ममय ब्रह्म है यह अर्थ है। ॐ अनादि मंत्र है उसके मात्र उच्चारण में भी कई प्रकार की शक्तियां भरी हुई हैं। जो जो ऋषि मुनि पूर्व में हुये और वर्तमान में हैं, उन्हों ने उसका जप किया है और करते हैं। उनके उच्चारण का प्रभाव भी उसमें है इसलिये उसके जप से शीघ्र ही फल की प्राप्ति होती है तो भी वह ज्ञान और अर्थ रहित तुच्छ है। इसलिये हरेक मंत्र के जाप करने में उसका ज्ञान और अर्थ जानना अत्यन्त ही आवश्यक है, जब तक ज्ञान और अर्थ यथार्थ न जाना जायगा तब तक उसके जाप का फल बहुत ही तुच्छ होगा।

ध्यान करने की अनेक युक्तियां हैं। सगुण और निर्गुण दो प्रकार का ध्यान है। निर्गुण अहंग्रह ध्यान की एक युक्ति यह है:-अहंग्रह उपासना में ॐकार का ब्रह्म-ज्ञान स्वरूप के साथ अभेद मान कर ध्यान किया जाता है। ॐकार का प्रथम पाद जो अकार है उसका व्यष्टि स्वरूप से चिंतवन करे, चिंतित पदार्थ के सिवाय और सबका अभाव समझना इसको चिंतवन कहते हैं। व्यष्टि रूप अपना स्थूल शरीर अकार है। स्थूल शरीर की जाग्रत् अवस्था ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय पंचभूत आदि जितना स्थूल भाव रूप जगत् है वह अकार है। सब स्थान से हट कर इस प्रकार अपने स्थूल शरीर का चिंतवन करना चाहियें। जैसे अपना स्थूल शरीर अव-

स्था आदि हैं इसी प्रकार सब के ही स्थूल शरीर अवस्था आदिक हैं मैं, तू आदिक का भाव छोड़कर स्थूलता और उसके सब विकार एक समान हैं इन सबको एक करके समझना समष्टि है और वह समष्टि अकार है यह भाव आते हुये अपने पृथक् २ भाव को भूल जाना चाहिये इस प्रकार समष्टि के स्वरूप की सिद्धि कर के उसको अलग रख देना चाहिये। पश्चात् अपना व्यष्टि शरीर जो सूक्ष्म है, उसका चिंतवन करना चाहिये यह ॐकार की उकार मात्रा है। जैसे स्वप्नावस्था और सूक्ष्म भोग और इन्द्रियादिक अपने हैं ऐसे ही ब्रह्मांड में जितने जीव हैं उन सब के भी वैसे ही हैं, इस पृथक् भाव को छोड़ कर सब की सूक्ष्म अवस्था को एक करके समझें। समिष्टि की उकार में चित्त जम जाने के पीछे पृथक् रक्खी हुई समष्टि की अकार मात्रा को मिलादे इस भाव को भी प्रथम की समान अलग रख कर अपने व्यष्टि कारण शरीर का चिन्तवन करे यह व्यष्टि की मकार मात्रा है, अव्यक्त स्वरूप है। जैसे अपने कारण शरीर की अवस्था है ऐसे ही ब्रह्मांड भर के जीवों की अवस्था है, अपनी पराई अवस्थाओं के भाव को छोड़ कर सब को एक कर देना समष्टि की मकार मात्रा है, यह भाव स्थिर करने के पीछे पृथक् रक्खी हुई उकार मात्रा को उसमें मिला दे तब समष्टि की एक मकार मात्रा रही जिसमें अकार उकार और समष्टि व्यष्टि भाव दोनों ही नहीं हैं और व्यष्टि भाव का मकार भी नहीं है, समष्टि का शेष मकार ही है उसको प्रथम की समान अलग रख दे फिर चिंतवन करे कि जैसे अपनी व्यष्टि का साक्षी है ऐसे ही सब ब्रह्मांड के जीवों का समष्टि साक्षी है,

इसलिये सब जीवों के साक्षी को एक कर देवे, समष्टि का साक्षी ब्रह्म है जो ॐकार की अमात्र है उसमें समष्टि की मकार मात्रा जो प्रथम अलग रक्खी थी मिलादे तब एक अमात्र रूप ही शेष रहा वह ही पूर्ण ॐ है, वह ही परब्रह्म है।

इस प्रकार ॐ में सब कुछ मिला है। व्यष्टि और समष्टि की तीनों अवस्था सबका एक तत्त्व ॐ है, वह ही सब में है, सब है, सब से रहित है, सब में मिला है, वह ही मेरा आत्मा है। ॐ स्वरूप सत्य है और अवस्था और मात्रा भ्रांति के स्वरूप हैं इसलिये ॐ उनसे मिला नहीं है। सत् में भ्रांति दीखती है इसलिये मिला हुआ मालूम होता है। जिस २ प्रकार ध्यान करता जाय उस २ प्रकार मन को उस आकार वाला बनाता जाय और अंत में मन-पने से रहित हो कर ब्रह्म ही हो जाय, यह ध्यान ब्रह्म स्वरूप है। ऐसे ध्यान करने वाले को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

अंतःकरण की शुद्धि वाला ही इस प्रकार का उत्तम ध्यान कर सक्ता है, जिसमें जितनी योग्यता हो उसके अनुसार सगुण के भी अनेक प्रकार के ध्यान हैं जो योग्यता अनुसार सद्गुरु से प्राप्त होते हैं। ॐकार का पूर्ण स्वरूप यह है:—जो कुछ है, नहीं है, वह सब ॐ है, ॐ से पृथक् कुछ नहीं है, ॐ विना ब्रह्मांड की स्थिति नहीं हो सक्ती तो भी वह ब्रह्मांड में मिला हुआ नहीं है। ॐ अद्वैत अक्रिय, आदिक है और उनसे रहित है। तब वह कैसा है ? वह अनुभव गम्य है। शास्त्र उसके विषय में जो कुछ कहते हैं तटस्थ रह कर कहते हैं। ॐ सच्चिदानन्द !

ब्रह्म-तरंग ।

तत्त्व ज्ञानियों का जो ब्रह्म तरंग है, अज्ञानी उसे मस्तराम की बड़ कहते हैं ! कुछ भी कहो, वह रंग बेरंगी गोला अज्ञान रूप महान् किले के ढा देने को, मैदान सफा करने को समर्थ है ! जो उसे समझता है, वह समझ को भगा देता है, अहंभाव को चार चार कर देता है, व्यक्ति की भक्ति छोड़ देता है, स्वरूप से स्नेह जोड़ता है, उसके लिये सब मंगल ही मंगल होता है, अज्ञान का जंगल जल जाता है, माया के दंगल में उसकी जीत होती है, धन्य है वह मस्त पहलवान् ! जिसने भेद भावना अस्त की है और भगवान् के स्वरूप में स्थिति पाई है, भेद के साथ वेद का भी अन्त किया है और स्वयं अनन्त हुआ है ! ऐसे ही को सन्त महन्त कहते हैं !

अहा ! हा ! आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! अज्ञान की लीला कैसा नीला पीला रंग दिखला रही है ! स्वरूप का भंग करके अंग वड़ा करती है ! मट्टी का खिलौना भट्टी में पक कर तैयार हुआ, 'मैं हूं' ऐसा मानता है, जानता है कि मेरी स्थिति है !नीति, रीति, भीति को ग्रहण करता है, मट्टी का घट टूटने को मरण मानता है ! मट्टी मट्टी से व्याही जाती है ! मट्टी मट्टी से पैदा होती है ! संसार, व्यवहार, परिवार की गाढी झाड़ी में भूलता है, फूलता है ! राग द्वेष के तीर तरकस से खेलता है ! दुःख झेलता है ! सब कुछ क्या है ? कुछ नहीं ! मट्टी ! मट्टी !! मट्टी !!! भूल की टट्टी में भूल का पुतला भूल से जन्म मरण का अनुभव करता है ! दावानल में जलता है ! खूब किया अज्ञान तूने ! तेरी प्रभा असत् प्रभा सत् का बोध होने नहीं देती ! यह ही तेरा विरोध है !

अज्ञानियों के लिये तेरा निरोध हाय ! कठिन है ! न छिपने वाले को छिपाया ! ढूंढने वाले ढूंढते २ थक गये परन्तु सत् को न पाया ! तेरा परदा उठे बिना कैसे पावें ?

पृथ्वी, जल और अग्नि को देखकर आश्चर्य होता है ! पृथ्वी क्या है ? तेरी ही एक चरण रज है ! जल क्या है ? तेरा ही एक बिन्दु है ! अग्नि क्या है ? तेरी ही महाज्योति की एक चिंगारी है ! फिर आश्चर्य क्यों करता है ? क्यों उनसे डरता है ? सोच ! विचार ! अज्ञान की अंधेरी युक्त चश्मे को चश्मे (नदी) में वहा दे ! साफ हो, परदा तोड़ दे ! देख ! तेरा ही तेरा प्रकाश जगमगा रहा है ! सिवाय प्रकाश अन्य क्या है ? प्रकाश की लहर प्रकाश से प्रसरती हुई फैल रही है ! परन्तु है प्रकाश ही ! प्रकाश ही प्रकाश है, न कोई विलास है, न कोई आश है, न किसी को किसी का त्रास है ! घास के वास को देवड़ी, हवेल क्यों समझ रहा है ? सब कुछ कुछ नहीं ! सब तत्त्व ही तत्त्व है ! सब ब्रह्म ही ब्रह्म है ! मैं तू का झगड़ा जगत् का रगड़ा होने से—भ्रम से सच्चा हो प्रतीत हो रहा है ! तू सच्चा है, जब तू कच्चा हुआ तब संसार जो कच्चा था सो सच्चा हुआ—पक्का हुआ, गलती ने तुझे मार डाला है ! गलती गई, न झगड़ा है, न बखेड़ा है, न अज्ञान अन्धकार है, न अविद्या रात्रि है ! चांदनी चमक रही है ! शीतलता दे रही है ! परम शांति रूप पवन वहन कर रहा है !

आकाश विस्तार वाला कहां है ? आकाश को अवकाश किसने दिया है ? तेरी कल्पना में ही अवकाश है ! ठोस परस तत्व में अवकाश कहां ? किसी का भी अवकाश नहीं ! कहां है

माया ! कहां है अज्ञान ? कहां है अज्ञानकृत आधि, व्याधि और उपाधि ? सब कल्पना—सब मिथ्या का अवकाश ही नहीं ! फिर भी मूढ़ अपने में अवकाश देकर, गूढ़ तत्त्व को भूल कर चौरासी की चरखी में घूमते हैं ! अपनी ही कल्पनाओं में घूमते हैं ! दुःख का महल चुन २ कर बंद होते हैं ! दृष्टि का अंतर है ! दृष्टि ने ही सृष्टि कर डाली है ! दृष्टि में ही सृष्टि भरी हुई है ! दूषित दृष्टि को फोड़ डाल ! तत्त्व की दृष्टि से तत्त्व को ही देख ! हाजराहजूर है ! प्रत्यक्ष है ! लक्षालक्ष से विलक्षण स्वयं लक्षण है ! इसके बोध से लक्षण प्रपंच का भक्षण होता है ! हाय ! अविद्या ! तू हट जाय तो मामला ठीक २ है ! बिगड़ा सुधरा कुछ नहीं है ! तेरे जादू का असर चला जाना ही बस है ! तेरी चालाकी में भी तत्त्व का कुछ बिगड़ा नहीं है परन्तु तेरे जाल में फंसे हुए को शुद्ध का शुद्ध फल होने नहीं देती ! हाय ! दुष्टा ! तू ऐसी सर्पिणी है कि जिस से प्रकट होती है, उसको ही डंस लेती है ! तेरा शिर कुचलने वाले वीर पुरुष को धन्य है ! तुझे कुचले बिना अचल शान्ति नहीं है !

पवन का वहन किस में हो ? न वन है. न भुवन है. पवन किसका हो ? किस प्रकार हो ? किसमें वहै ? किसे सुखावे ! किस को बहावे ? कहो तो सही ! कहां आवे ? कहां जावे ? पवन ही पवन में घूमता है ! पवन को ढाता है, वहाता है ! सिवाय संकल्प कहां देखा जाता है ? जादू के चेटक की टिकटिकी से अहंभाव की डुगडुगी में अल्प भी महान् मालूम हो रहा है ! क्यों दुखी होता ? पटक दे झोली झंडे की उपाधि, लादे क्यों फिरता है ? सफाचट तू ही भरा हुआ है ! बात बात, अपने को

पहिचान, ज्ञान, ज्ञान क्या करता है ? कहां खोज रहा है ? तू ही है ज्ञान की खान ! खोल दे अविद्या के कपड़े का परत ! जो तू शेष न रहे तो मेरी तेरी शरत ! दानेश्वर का दानेश्वर होकर क्यों बनता है भिक्षुक क्षुल्लुक ? जरा निगाह से देख ! प्रेम से देख ! कपड़े लत्तों की उपाधि को छोड़कर देख ! क्या दीखता है ? प्रत्यक्ष है प्रत्यक्ष ! परमपद ! बेड़ा पार है !

नदियों का वहन, तट की शोभा, जल का शब्द, भिन्न २ दीखता है, भला ! उनमें कौनसी भिन्नता है ? नजर की भिन्नता है ! नजर से ही भिन्नता है, नजर से ही प्रसंन्नता है ! पृथ्वी में रहने वाले नदी, पहाड़ और प्राणी पृथ्वी से भिन्न कहां हैं ? सबका अस्तित्व पृथ्वी में ही है ! ऐसे ही पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्यक्त में, अव्यक्त परम तत्त्व में अस्त होता है; अस्तित्व सब में सब प्रकार से परम तत्त्व का है। परम तत्त्व के सिवाय सब काल्पनिक, सब मिथ्या, सब परिवर्तन वाला, सब नाशवन्त, सब दिखावे मात्र है ! उसमें चित्त को क्यों लगाऊं ? विपत्ति को क्यों लाऊं ? अनित्य से मिलने से नित्य को भी अनित्य का अनुभव करना पड़ता है ! नित्य में नित्य को रखने से, नित्य बने रहने से सब गुम ! अहा ! हा ! कैसी, शान्ति ! कैसा सुख ! अनुभवी ही जानता है ! अनुभवी के हृदय को सब कुछ होते हुये भी तुच्छ होने से कुछ नहीं ! विकार की दृष्टि से दीखता हुआ भी परम तत्त्व के सिवाय क्या है ? बड़ा आश्चर्य है ! सब समझ की गलती थी ! तिल की ओट पहाड़ था ! तिल हटा ! पहाड़ गया ! पहाड़ का कण हो गया ! ऋण चुका ! गुण भागा ! अधिपति की स्थिति

में ही मति आरूढ़ हुई ! मति पिघली ! गति में घुसी ! आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अहाहा ! तत्त्व कितना विशाल है ! उसकी कोई उपमा नहीं मिलती ! रात, दिन, वर्ष, कल्प अरे ! अबाधित अखण्ड काल तक मशाल —ज्योति जलती है ! तब भी बुझी न थी ! पिशाचिनी घुस गई थी ! गुरु ने गुरु धूनी दी ! चीख़ मार कर भागी ! दम भर भी न टिकी ! अब क्या कहूँ अपनी महिमा ! मैं तो मैं ही हूं ! महान् हूँ ! शान्ति का सागर हूँ ! सब की सत्ता हूँ ! चैतन्य का चैतन्य हूँ ! आनन्द का अम्बर हूँ ! जो कुछ कहूँ सो थोड़ा है ! कल्पना के घोड़े वहां नहीं पहुंचते ! कल्पनातीत न कहूं तो शब्द झूठे होते हैं ! रे ! इस अनूठे को क्या कहा जाय ? चुप ! बस चुप ! सच्चिदानन्द ! न मैं हूं न मेरा है ! कहां है तू, कहां है तेरा ? सब ही है झमेला ! आवागमन का फेरा ! हां ! हां ! सच्चिदानंद ! आनंद ही आनन्द है !

कैसा तमाशा नटनी ने फैला रक्खा है ! नेत्र कटाक्ष से मोह को प्राप्त हुये बन्दर के समान नाच नाच रहे हैं ! नटनी नचा रही है ! अन्दर कोई देखता नहीं ! कपड़ा ही कपड़ा है ! न नटनी न नट ! मोहास्त्र लगने से जीते हुये मर रहे हैं ! ब्रह्मास्त्र को खेंच मार ! नटनी के लगते ही जय जयकार है ! न संसार है ! न जन्म मरण का झगड़ा ! न सुख दुःख का रगड़ा ! फिर क्या है ? स्वरूप ही स्वरूप है ! न कुछ कहना है न सुनना है ! न कुछ करना है न धरना है ! अपने आप में अपना विचरना है ! न कहीं चलना है न फिरना है ! निश्चित हुआ ! अज्ञान का भूत उतर गया ! स्वरूप का बोध हुआ ! अहाहा ! कितना बड़ा !!

वैराग्य रोम २ में भर जायं, उत्साह का उफान ऊपर तक आजाय, श्रद्धा का जामा शिर से पैर तक लग जाय तब क्या है देरी आत्म दर्शन में ? क्षण भर के कार्य में जन्म जन्मांतर की क्या आवश्यकता ? निशाने पर एक गोला ही ताक कर मारने की देरी है ! हां ! सामर्थ्य चाहिये ! आत्मवल चाहिये ! स्वार्थ त्यागने से ही पूर्ण स्वार्थ की सिद्धि है ! विना मरे जिया तो क्या जिया ? मर कर जीने की बलिहारी है ! क्या स्वर्ग दूर है ? क्या परम पद दूर है ! अपने आप में ही स्वर्ग ! अपने आप में ही अमरता ! फिर क्यों ढूंढता फिरता है ? शरीर के जामे को छोड़, मन को तोड़, मेरे तेरे को घोंट पीस कर एक कर, अंधे चश्मे को उतार, दिव्य चश्मा लगा कर देख ! अपने सहित सब संसार को—ब्रह्मांड को आनन्दाम्बु में एकमेक हुआ देख ! देख ! ज़रा निगाह से देख ! एक पलक मार कर देख ! एक ही वार दीखने से कभी हटने वाला नहीं है ! फिर देखने का काम नहीं है ! विना देखे ही दीखेगा ! अन्धेरे उजाले, रात दिन, सब में वह ही दीख रहा है ! अहाहा ! क्या सामर्थ्य ! क्या आश्चर्य ! क्षण भर में सब मामला पलट गया ! कंगाल का श्रीमान् हो गया ! इतना श्रीमान् ! कह नहीं सक्ता ! सबका मालिक ! सबका खजाना ! धन्य है उसको जिसकी यह स्थिति है !

तन मैं नहीं, तन मेरा नहीं मन मैं नहीं, मन मेरा नहीं, इन्द्रियां मेरी नहीं ! न तन का काम है, न मन का काम है, न इन्द्रियों से कुछ काम है ! जब सब ही शरीर मेरे हैं तो एक को मैं अपना शरीर क्यों कहूँ ? जिसको काम हो, वह अपने एक शरीर को माने, मेरे सब ही शरीर हैं ! सबका मन मेरा ही मन

है ! ब्रह्मांड मेरा शरीर है ! ब्रह्मांड से बाहर भी मैं ही हूँ ! मेरा माप आज तक किसी ने नहीं निकाला, न कभी कोई निकाल सक्ता है अमाप के मापने को कौन समर्थ है ? मापने वाला मैं हूँ, माप मैं हूँ, और मापे जाने वाला मैं हूँ ! आपही अपनी बलिहारी ! आपमें ही आप रहा हुआ है, आपसे आप दूर दीखता है ! आपसे आप समीप है ! सब कथन है ! समझने को कथन है ! निर्मल घी में से मथन करके क्या निकालेगा ? वह ही है ! जैसे का तैसा है ! न हुआ है, न होगा न है, सब से है विलक्षण ! मैं ही हूँ !

चाहे ग्राम में रहे, चाहे परदेश जाय, चाहे जागता रहे, चाहे सोता रहे, कहां जा सक्ता है ? जाने को स्थान ही कहां है ? सब्भान नहीं है, यह ही तेरी भूल है ! भूल गई, शूल मिटा ! ज्यों का त्यों ! जैसे का तैसा ! न कुछ बिगड़ा न कुछ सुधरा ! जल का जल ! चाहे बिन्दु हो ! चाहे सिंधु हो ! न तरंग है, न चक्र है, न बुद्बुदे हैं ! जल ही जल भरपूर भरा है ! रे ! कहीं जल से जल सक्ता है ! गरम जल से मकान जल सक्ता है ? छोड़ भूल आ होश में ! क्यों दीन बनता है ? क्यों गोते खाता है ? सोच विचार, क्या सूखी नदी तुझे डुबो सक्ती है ? नदी कहने की है, संसार समुद्र कथन मात्र है ! कहां है उसमें जल ? कहां से आया जल ? एक में दूसरे की गम नहीं, तब कौन डूबे ? कौन डुबावे ? सब है भानमति का खेल ! बुद्धि की भ्रष्टता का तामाशा ! शरीरासक्ति के जल और विषया सक्ति के हलवा पूरी के स्वाद ने ही कंगाल बना डाला है ! चित्र के चन्द्र से क्या शीतलता हो सक्ती है ? क्या बालु के लड्डुओं से तृप्त होना चाहता है ? नजर

घुमा ! मेरे सामने देख, मेरी वृत्ति से वृत्ति मिला, फिर देख, तेरे आंख के पलक खुल जांयगे ! उजाला झक हो जायगा ! उठ ! उठ!! उठ !!!

सब कुछ सच्चा हो रहा है ! जब तक सच्चे की प्राप्ति नहीं तब तक सच्चा है ! क्या सच्चा है ? वेद है, पुराण है, कुरान है ? सब संसारिक है ! संसार से भरे हुये है ! उनमें के गुप्त को ढूंढ ! गुप्त में सुषुप्त मत हो ! स्वभाव को प्राप्त हो स्वभाव को प्राप्त हो ! दाल चावल नौन मिरच की तुझे क्या फिकर ? तू हर हमेश तृप्त है ! सब का तृप्त करने वाला है ! तेरी भूल ने तुझ पर जप्ति कर डाली है ! तेरा माल लूट लिया है ! एक क्षण भर भी जो तू अपने स्वरूप को जाने, सब चोर चकार उड़ जांयगे ! तेरे लिये न सरकार रहेगी, न दरबार रहेगा, न घरबार की झंझट रहेगी ! सब ही तेरा स्वरूप हो जायगा ! सब तेरे चरण की रज हो जांयगे ! जो तुझे सर्वोत्कृष्ट होने की इच्छा हो तो मेरा कहा मान :—सब इच्छाओं को तिलांजलि दे, मनुष्य, पितृ और देवता सब का एक साथ तर्पण कर डाल ! तुझे साम्राज्य की प्राप्ति न हो तो मेरी जिह्वा को काट डाल ! उत्साह से उठ ! ले अखंडित शांति—साम्राज्य !

क्यों चिल्लाता है ? मन चंचल है ! छोड़ मन को, देख, मन की चंचलता क्या कर सक्ती है ? रे मूर्ख ! तू ही मन बनाया है ! मन को क्यों दोष देता है ? तेरे ही जोश से मन में होश आता है, विषयों के संग से अपना होश गुमाता है ! तुझे न मन दुःख देता है न तन दुःख देता है । तू ही अपने आपको दुःख देता

है ! तुझे दुःख देने वाला कोई जन्मा ही नहीं है ! दर्पण में दीखते हुए मुख को " मैं हूँ " मान कर तू भ्रमण कर रहा हैं ! दर्पण को छोड़ ! वृत्ति को लौटा कर अपने में जोड़ ! देख कैसा सुख स्वरूप है ! कैसा चैतन्य स्वरूप है ! कैसा आनन्द स्वरूप है ! तुझे संसार से क्या है ? तू अपने आप में परिपूर्ण है ! महाराजाधिराज है ! शाहंशाह का शहंशाह है !

क़ागज़ के अनेक प्रकार के रंगीन चित्रों को क्या कोई समझ कर दौड़ता है ? चित्र ही है ! चित्रों में जान कहां है ? चित्रों में, जो स्थिति, भास और आनन्द दीखता है, कागज़ का है ऐसे ही जगत के भगत को जगत सच्चा दीखता है ! जिसमें स्वगत आदि कोई भेद नहीं, वह ही सबका आधार है ! आधेय आधार से भिन्न नहीं है ! चित्रित चित्र की सिद्धि कागज़ विना नहीं होती चित्र भी कागज़ रूप ही है ! ऐसे हो मित्र ! सब जगत् को चित्र समझ ! विचित्रता में विचित्र मत हो ! पवित्र में पवित्र ! तू अपवित्रता के संग से क्यों बने अपवित्र ? क्यों बने चित्र ? संसारी आंख को फोड़ कर आत्मिक दृष्टि से निहार ! सब दुःख रूप सृष्टि तेरे लिये सुख रूप हो जायगी, व्यष्टि समष्टि एक हो जायगी ! न तुझे व्यष्टि की आवश्यकता न समष्टि की ! आनन्द की वृष्टि में भीज ! सब दिशाओं में आनन्द ही आनन्द ! पूर्ण परमानन्द !!

जन्मा हुआ मरता है, मरा हुआ जन्मता है, न मैं जन्मता हूँ, न मरता हूँ ! मरने वाला मरो, जन्मने वाला जन्मो, मुझे उनसे क्या ? मैं तो ज्यों का त्यों अपने आप में ही हूँ ! न मुझ से आप है, न मुझ में पाप है ! मैं तो सबका प्रकाशक हूँ ! सब

से भिन्न हूँ ! आहा ! फिर भी सब में ही मैं हूँ ! मेरी महिमा का पार नहीं ! कौड़ो कौड़ी के शब्दों में मेरा वर्णन करने का सामर्थ्य कहां हैं ? शब्द में और मुझ में तो जमीन आसमान का अन्तर हैं ! मैं शब्दातीत शब्दों का प्रकाशक हूँ ! मुझ को मैं ही जान सक्ता हूँ ! मुझको जानने की न ऋषियों की ताकत हैं, न देव की, न युग की, न युगांतर की ! सैकड़ों ब्रह्मा और ब्रह्मांड, सैकड़ों इन्द्र, सैकड़ों यजमान मुझमें दीखते रहते हैं, बदलते रहते हैं ! बन्दा, खुदा से रहित मेरा स्वरूप न बिगड़े, न सुधरे सब के उत्पत्ति, नाश, बिगाड़, सुधार की प्रतीति मुझ से है ! मेरी प्रतीति किसी से नहीं ! मैं तो मैं ही मैं हूँ ! तब सब क्या ? विलास ! विलास !! केवल संकल्प का विस्तार !!! केवल नेत्र की एक माधुरी पलक !!!

जगत् झूंठा ! जगत् का ज्ञान झूंठा ! जगत् का ज्ञान बताने वाले झूंठे ! जगत् में जन्म झूंठा ! जगत् में मरण झूंठा ! झूंठ की बाजी में राजी होना ही झूंठ हैं ! झूंठ में मूंठ लगी, झूंठ में मूंठ गई, झूंठ का खेल ! झूंठ का खिलाड़ी ! आ हा, हा ! क्या फैलावा है झूंठ का ! एक दो चार नहीं, सभी फंसे हैं ! फंस कर भी हंस रहे हैं ! कैसा आश्चर्य है । अपने आप हंस को भूल गये ! हंस के काग बन गये ! लगे कांव कांव करने ! एक आंख सच्ची, एक आंख झूंठी, बनी आंख दो ! ऐसे दो की दुनियां ! कोई कुछ बना ! कोई कुछ बना ! हिसाब ज्यों का त्यों ! कुनबा डूबा क्यों ? अज्ञान ! आज्ञान !! आश्चर्य !! आश्चर्य !!! फंसे हुये अज्ञान में भी ज्ञान ! उस विकार रहित, संसार रहित ज्ञान को

कौन पकड़ता हैं ? ज्ञानी ही ज्ञान को जानता हैं ! अज्ञानी न ज्ञान को, न अज्ञान को ! खूब तमाशा है !!!

क्या यह दृश्य लड़कों का तमाशा तो नहीं हैं ? एक राजा बना, एक दीवान, एक कारभारी, एक दरबारी ! सेठ, साहूकार, प्रजा, नोकर, चाकर, अहा ! हा ! यह भेद क्यों ? तमाशे का ! तब तो उसे तमाशा ही रहने दो ! हमारा ही तो तमाशा है, ने तमाशे के बनाये हुये हम ! हां ! तमाशा ही तो तम—आशा है जो उस में घुसा, उसी का हुआ ! यह सब दृश्य हैं, मैं अबाधित द्रष्टा हूँ ! द्रष्टा के लिये दृश्य है, न दृश्य के लिये द्रष्टा ! दृश्य मिथ्या है, द्रष्टा अबाधित, अनपेक्षित सत्य है ! मौज से कभी द्रष्टा बनू कभी द्रष्टा का भाव भी न रक्खूं , मेरी मौज है ! मेरी स्वतंत्रता है ! मैं चाहे जैसे रहूं; चाहे ! जैसेबोलूं , मुझे किसी का भय नहीं है ! निर्भय को भय कहां ? भय वाले को निर्भयता कहां ? न भय है ? न भव है ? एक भगवान् ही भगवान है ? यह ही ज्ञान है, यह ही विज्ञान है ! इसके सिवाय क्या होगा ? अन्य ज्ञान भान सब ही भ्रम खान मान !!!

नाटक के तमाशे को टिक टिकी बांध कर क्यों देखता है ? यह तो है नाटक का तमाशा ! नटनी के हाव भाव और कटाक्ष से मोह को क्यों प्राप्त होता है ? अपने स्वरूप से विरोध क्यों करता है ? परदा उठा ! रंग विरंग, गान, तान, नाच में क्यों राचता है ? फिर परदा गिरा ! सुन सान, चुप चाप, अंधेरा घोर ! न तुझ पर परदा पड़ा, न तुझ पर से परदा उठा, तू तो ज्यों का त्यों वैसे का वैसा ही है ! तब राग द्वेष से तुझे क्या ? सामने

दीखते हुये नये वेष से क्या ? सब चला चली का तमाशा देखता हुआ अपने को अचल अखंडित देख ! न तुझे कर्म की लगी रेख है ! न तुझे कर्म पर मारना मेख है ! न तेरा वदला हुआ वेष है। यह सब नट नटनी का तमाशा अपने ऊपर क्यों लेता है ? इसी तमाशे का प्रेम तुझ से घर २ भीख मंगावेगा ! अनेक योनियों का वेष धारण करावेगा ! तुझे रुलावेगा ! मार आवाजः–'मैं सत् स्वरूप हूं' हो जा खड़ा ! फैल जा सब में ! देख तू पूर्ण सच्चिदानंद है ! पूर्ण समृद्धिवान् है !!

दौड़ २ कर थका हुआ भी विश्रांति को नहीं लेता ! मेरे तेरे के रस्से से खींच तान कर रहा है ! जल को विलो रहा है ! युग युगांतर वीत जाने पर भी तेरे हाथ में तत्त्व क्या आवेगा ? तत्त्व तत्त्व में से मिल सक्ता है न कि अतत्त्व में से ! एक खटिया पर एक रात्रि के स्वप्न से संसार की किंचित् भी विशेषता नहीं है ! चाहे जितना जाओ, आओ, खाट के खाट पर ही होते हो, अज्ञान में यह ही सब हाल हवाल होता है परन्तु मालूम नहीं होता कि हम स्थान से बाहर जाते ही नहीं ! अज्ञानी का अज्ञान हटाना बड़ा मुश्किल होता है ! और इतना सहल है अज्ञान का हटना कि उस सहलपने का कोई दृष्टांत ही नहीं है ! त्याग ! त्याग !! त्याग !!! त्याग से सब कुछ होता है ! विना त्याग कुछ नहीं ! त्याग से ही महाराज्य–चक्रवर्ती महाराज्य प्राप्त होता है ! राग से कभी नहीं ! जिसने त्याग का पूर्ण सहारा लिया उसे अपने आपको पाने में देर क्या ? उसके लिये अन्धेर क्या ? चौंक ! उठ जाग जा ! तू ही तू है !

कैसा सुन्दर रंग आकाश में दीख रहा है ! लाल, पीला, नीला सफेद, गुलाबी, आसमानी ! भारी में भारी चित्रकार भी इस प्रकार के रंग विरंगे चित्र निकालने में समर्थ नहीं हैं ! कुछ भी देखो ! कैसा भी देखो ! असल में है क्या ? आकाश है या कुछ और ? आकाश में रंग जा नहीं सक्ता ! आकाश में रंग कोई भर नहीं सक्ता ! आकाश में रंग का संग नहीं ! तो भी आकाश में रंग देख कर क्यों होता है उमंग ! जैसे आकाश का रंग है, ऐसा ही जगत् का ढंग है ! एक सिवाय दूसरा नहीं है ! और दीखते हैं अनेक ! एक का अनेक दीखना ही अविवेक हैं ! वस्तु को छोड़ कर मिथ्या को क्यों पकड़ता हैं ? क्या आकाश के अनेक दीखते हुये रंग कुछ काम में आ सक्ते हैं ? क्या कपड़ा रंगा जा सक्ता है ? नहीं ! नहीं ! तब उन रंगों में क्यों मोहित होता है ? सब संसार का यह ही हाल है ! आत्म तत्त्व घन रूप से भरा हुआ है ! इसमें कल्पना के आकाश आदि पांच तत्त्व और जगत् के प्राणी, पशु, पदार्थ आदि रंग दिखाव ही दिखाव है ! भूल की वस्तुय हैं ! स्वयं चिद्घनानंद में उनका अवकाश ही नहीं ! मूर्खों की कल्पना से अबाधित तत्त्व को क्या ? वह तो ज्यों का त्यों है ! उसका हो उसे जान ! बंद हो कल्पना चित्र पट ! विवेक के सामने तेरा बल चल नहीं सक्ता. !

पढ़ पढ़ कर थका ! पढ़ा खाक नहीं ! आंखें फाड़ २ अंधा हुआ ! देखने का न देखा ! सुन सुन कर वहिरा हुआ ! सुनने का न सुना ! यह तो कुछ और ही पढ़ना लिखना है ! पढ़ने वाला, पढ़ाई और पाठ जिसमें भिन्न नहीं है, यह पढ़ना है ! देखना क्य हैं ? रंग विरंग नहीं ! अपने स्वरूप को देखना ! एक में ही सब हैं ! एक में ही संमिलित हैं ! एक ही सत्य है ! ऐसे एक को देखना, देखना है ! तब ही आंतर परदा टूटता है ! माया का खजाना खूट

जाता है ! व्यक्ति भाव लूट लिया जाता है ! सुनना क्या है ? सुनते सुनते जगत् भाव से शून्य हो जाय ! सुनने से सुनने समझने की किताब बंद होजाय ! वही सुनना है ! सुनते २ सुनना बाकी रहा तो कुछ न सुना ! मित्र ! तैयार हो जा ! ऐसा अनुकूल संयोग न मिलेगा ! जगत् का वियोग स्वयं संयोग, अपना ही पाठ पढ़ ! अपने ही तत्त्व स्वरूप को देख ! सुन कर अपनी ही महिमा का अनुभव कर ! तेरा कल्याण होगा !

धम ! ढोल में पोल ! पोल में से डंडे की चोट लगते ही आवाज़ निकल पड़ता है ! विचार ! कौन है बोलने वाला ? पोल सिवाय अन्य कुछ दिखला सक्ता है ? इसी प्रकार अज्ञान की पोल में अनेक प्रकार के विविध शब्द हो रहे हैं ! नाच, तमाशा, गाना, मोह, मद और अभिमान ! पोल का कहां ठिकाना ? जहां पोल नहीं, वहां पोल की कल्पना ! आश्चर्य ! अपने स्वरूप का होश खाली करके पोला हो पोल में घुस गया हुआ सब ब्रह्मांड है ! अपनी पोल मिटी, सब पोल यकायक गायब ! सबका अपने ऊपर आधार है ! जहां आधार का बोध हुआ, अध्यस्त गुम ! मिटी सब धाम धूम ! बस ! आनन्द ! वाह ! वाह !!

आंख खुलते ही आश्चर्य ही आश्चर्य दीखता हैं ! क्षण भर में ही क्या होगया ? कुछ का कुछ होगया ! तखता ही उलट गया ! आपा आप दीख रहा है ! करना धरना समाप्त हुआ ! कैसा आश्चर्य ! क्या मैं नींद में पड़ा था ! मैंने अनेक जन्मों का अनुभव किया ! सब स्वप्न ही रहा ! अरे ! तब झूँठ मूँठ ही दुखी हुआ ! स्वप्न ने मुझे परेशान कर दिया ! फिर भी जरा आंख मूँद कर देखूं, क्या देखता हूं ? आंख मुंदी ! अरे ! प्रथम के झगड़े ज्यों के त्यों दीख रहे हैं ! दीखते रहो ! मुझे क्या ? अब यह स्वप्न मेरा क्या कर सक्ता है ? उसकी असलियत मुझे मालूम हो गई !

अब मैं दुःखी नहीं हो सक्ता ! अब मुझे झगड़ा लिपट नहीं सक्ता ! आश्चर्य ! आंख मूंदने से कुछ और आंख खोलने से कुछ दीखता है ! अब मुझे वंद अथवा खुली आंखसे भी क्या ? जब तक खुली न थी तब तक पुरुषार्थ की आवश्यकता थी ! अब सब ठीक ठीक है ! न मेरा शरीर न मेरी आंख, चाहे रहो, चाहे जाओ, चाहे सब कुछ दीखो या मत दीखो, जो मैं हूँ, जो मैंने जाना है, उसका किसी हालत में किसी अवस्था में नाश नहीं है ! प्रत्यक्ष वह ही सब में बिराजमान है ! धन्य है ! धन्य है ! अविचल तत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव !

बिना सीढी मैं कितना ऊंचा चढ़ गया ! बिना पर मैं आकाश से भी ऊंचा उड़ गया ! अहा ! हा ! क्या देखता हूँ ? इन्द्र, ब्रह्मा विष्णु, महेश, सब ही नीचे रह गये ! अरे ! यह ब्रह्मांड तो एक गेंदसा दीख रहा है ! महान् २ देवता उसमें चेंटी के समान रिंग रहे हैं ! बड़े २ पहाड़ छुआरे की गुठलियां दीख रही हैं ! नदियां तो छोटी २ अस्पष्ट लकीर हो रही हैं ! अपने शरीर को देखता हूँ तो उसमें न हाड़ है, न मांस है, न हाथ है, न पैर है, तत्त्व ही तत्त्व भरा हुआ है ! कितना लम्बा है ! कितना चौड़ा है ! कुछ पता ही नहीं ! बता ! मैं कौन हूँ ? जो हूँ सो ही हूँ ! न कह सक्ता हूँ, न बता सक्ता हूँ ! अरे ! जो ब्रह्मांड गेंद दीखता था, वह तो मेरी एक बाल भर जगह में है ! मैं इतना बड़ा ! कभी मुझे ऐसा स्मरण ही नहीं होता था कि मैं इतना होऊंगा ! आज ही ठीक पता लगा है ! जगत् का भूत करतूत सहित उतर गया ! अपने आप का नशा, चढ़ गया ! शांति के सागर में तराबोर हो गया ! बस ! हुआ पूर्ण ! हुआ चुप ! क्या कहूँ ? किससे कहूँ ? ॐ ओऽम् ब्रह्म् !!!

समाप्त